शोध सरोवर पत्रिका

आरती, वषुतक्काटु, तिरुवनन्तपुरम - 695 014, केरल राज्य।

RNI No. KERHIN/2017/70008 ISSN No. 2456-625 X

वर्ष 5 अंक 20 त्रैमासिक हिन्दी शोध पत्रिका 10 अक्तूबर 2021

पिअर रिव्यू समितिः
डॉ.टी.के.नारायण पिल्लै
डॉ.शांति नायर
डॉ.के.श्रीलता

मुख्य संपादक
डॉ.पी.लता

प्रबंध संपादक
डॉ.एस.तंकमणि अम्मा

सह संपादक
प्रो.सती.के
डॉ.एस.लीलाकुमारी अम्मा
श्रीमती वनजा.पी

संपादक मंडल
डॉ.बिन्दु.सी.आर
डॉ.षीना.यू.एस
डॉ.सुमा.आई
डॉ.एलिसबत्त जोर्ज
डॉ.लक्ष्मी.एस.एस
डॉ.धन्या.एल
डॉ.कमलानाथ.एन.एम
डॉ.अश्वती.जी.आर

सूचना : पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार संबंधित लेखकों के हैं। उनसे संपादक तथा प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

इस अंक में

संपादकीय	:	3
नरेन्द्र कोहली : एक परिचय और उनसे मेरा संबंध	: डॉ.के.सी.अजयकुमार	4
कृष्ण कथा पर आधारित उपन्यास 'महासमर' : एक अध्ययन	: डॉ.पी.के.प्रतिभा	9
'वरुणपुत्री'- मिथक और समसामयिकता की फैंटसी में झलकता युगीन यथार्थ	: डॉ.पी.गीता	15
नरेन्द्र कोहली का उपन्यास 'अहल्या' पर एक विचार	: डॉ.बिन्दु.सी.आर	23
जीवन के उदात्त मूल्यों का उदात्त चित्रण -'अभिज्ञान'	: डॉ.अंबिली.टी	26
सही उत्तर चुनें	: डॉ.पी.लता	31
'स्मरामि': एक परिदृश्य	: डॉ.लता.डी	32
'अभिज्ञान' उपन्यास की रीढ़ की हड्डी 'कर्म सिद्धांत'	: डॉ.धन्या.एल	37
चिद्-चितेरे की आत्मव्यंजना	: डॉ.रंजीत रविशैलम	43
उत्तराधुनिक हिन्दी कविता- एक परिदृश्य	: डॉ.रॉय जोसफ	47

केरल विश्वविद्यालय से अनुमोदित पत्रिका

लेखकों से निवेदन

भाषा, साहित्य, समाज एवं संस्कृति पर लिखी गयी स्तरीय मैलिक तथा अप्रकाशित रचनाएँ भेजें। प्राकशनार्थ अनूदित रचनाओं के साथ मूल लेखकों से प्राप्त सहमति पत्र भी भेजें। रचनाएँ डी.वी.सुरेख ई.एन फोण्ट में वर्ड या पेजमेकर फाइल में भेजें। रचना के अंत में अपना पूरा डाक पता, मोबाइल नंबर और ई-मेल पता भी अंकित करें। संक्षिप्त जीवन-परिचय और फोटो भी भेजें।

संपादक

डॉ.पी.लता

शोध सरोवर पत्रिका

मूल्य :	एक प्रति रु. 100/-
	वार्षिक शुल्क रु.400/-

पत्रिका के संबंध में अधिक जानकारी केलिए संपर्क करें - डॉ.पी.लता (संपादक, शोध सरोवर पत्रिका; मंत्री, अखिल भारतीय हिन्दी अकादमी), आरती, टी.सी. 14/1592, फोरस्ट ऑफीस लेन, ई-28, वषुतक्काटु, तिरुवनन्तपुरम - 695 014, केरल राज्य। फोन : 0471 - 2332468, 9946253648

ई-मेल : akhilbharatheeyhindiacademy@gmail.com

वेबसाइट : www.shodhsarovarpathrika.co.in

संपादकीय

कालजयी उपन्यासकार डॉ.नरेन्द्र कोहली

डॉ. नरेन्द्र कोहली ऐसे हिंदी उपन्यासकार हैं, जिन्होंने हिन्दी साहित्य में महाकाव्यात्मक उपन्यास का श्रीगणेश किया। कालयजी उपन्यासकार नरेन्दर कोहलीजी ने प्रायः सभी विधाओं में तूलिका चलायी।

कोहलीजी का जन्म 6 जनवरी 1940 को हुआ। जन्म स्थान है अविभाजित पंजाब का सियालकोट, जो अब पाकिस्तान का अधीनस्थ प्रांत है। माता का नाम विद्यावती था और पिता परमानंद कोहली थे।

कोहलीजी का साहित्यिक जीवन कविता-रचना के साथ शुरू हुआ। उनके बचपन में एक ज्योतिषी का प्रवचन हुआ कि यह बच्चा भविष्य में महान साहित्यकार बनेगा। यह प्रवचन सही हुआ कि कोहलीजी विख्यात साहित्यकार भी बने। कोहलीजी ने शुरू में कविताएँ लिखीं, जो विविध पत्र-पत्रिकाओं में छपीं। छठी कक्षा में पढ़ते वक्त उन्होंने पहली कविता लिखी।

फिर कवि कोहलीजी ने कहानी लेखन शुरू किया। हिन्दी और उर्दू भाषाओं में उन्होंने कहानियाँ लिखीं। कहानी-लेखन के साथ वे लेखक के रूप में चर्चित होने लगे। 'कहानी' पत्रिका में सन् 1960 में प्रकाशित 'दो हाथ' उनकी पहली कहानी है।

कहानीकार कोहलीजी ने उपन्यास-लेखन शुरू किया तो वे विख्यात और बहुचर्चित हुए। उनकी रचनाएँ मिथकीय हैं, प्रासंगिक हैं। पुराणों से कथानकों को लेकर आधुनिक संदर्भानुसार चित्रित करके सनातन जीवन-मूल्यों की स्थापना करने का महत्वपूर्ण कार्य उन्होंने किया।उनका पहला उपन्यास है 'पुनरारंभ' (1972)। हिंदी साहित्य में रामभक्ति काव्य कई लिखे गये हैं, किन्तु रामकथा पर उपन्यास रचना सर्वप्रथम कोहलीजी ने की। उन्होंने महाभारत कथा के आधार पर कई उपन्यास लिखे, जैसे-महासमर, अभिज्ञान, सैरन्ध्री, मत्स्यगंधा, कुंती और हिडिंबा।

सन् 1971 में भारत पर पाकिस्तान का हमला हुआ। भारत-पाकिस्तान युद्ध हुआ तो कोहलीजी ने निराशा के वास्ते 'अभ्युदय' लिखा, जिसमें राम-रावण युद्ध की पुनर्सृष्टि हुई। कोहलीजी का 'महासमर' उपन्यास 'महाभारत' पर आधारित है, विशेषकर कुरुक्षेत्र युद्ध पर आधारित है। इसका युद्ध शत्रुओं के बीच ही नहीं, मानव का अपने आप से भी है। 'महासमर' उनका सर्वाधिक प्रसिद्ध उपन्यास है, जो 'महाकाव्यात्मक उपन्यास' विशेषण के योग्य बना है। 4000 पृष्ठों का यह उपन्यास खंडों में विभाजित है, जैसे- बंधन, अधिकार, कर्म, धर्म, प्रच्छन्न, अंतराल, प्रत्यक्ष, निर्बंध, आनुषंगिक आदि।यह उपन्यास आधुनिक हिन्दी साहित्य की सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। 'आधुनिक तुलसीदास' के रूप में लोकप्रिय हुए कोहलीजी के रामकथा सीरीज़ के अंतर्गत आनेवाले उपन्यास हैं -'दीक्षा', 'अवसर', 'संघर्ष की ओर', 'साक्षात्कार', 'युद्ध' (2भाग) आदि। महाभारत की कथा पर आधारित उनके उपन्यासों में आत्मसंघर्ष से पीड़ित पात्रों का परिचय दिया गया है। 'तोड़ो कारा तोड़ो' (छः खण्ड) विवेकानन्द के जीवन पर आधारित उपन्यास है। 'न भूतो न भविष्यति' इसके

प्रथम चार खंडों का संकलन है, जिसे कोहलीजी का सन् 2012 का व्यास सम्मान प्राप्त हुआ।

अपनी रचनाओं को कोहलीजी कई पुरस्कारों से विभूचित हुए। जैसे- राज्य साहित्य पुरस्कार (1978), मानव संगम साहित्य पुरस्कार (कानपुर 1978), हिन्दी अकादमी दिल्ली से साहित्य सम्मान (1986), डॉ कामिल बुल्के पुरस्कार, (बिहार सरकार,1990), मानव संगम साहित्य पुरस्कार (कानपुर 1978), चकल्लस पुरस्कार (मुंबई 1991), रामकथा सम्मान, भारत भूषण साहित्य सारस्वत सम्मान (मुंबई 2008), व्यास सम्मान(2012), (के.के.बिड्ला फाउण्डेशन, नई दिल्ली), पद्मश्री (2017) आदि।

पी जी डी ए वी कॉलेज (दिल्ली 1963-65) तथा मोतीलाल नेहरू कॉलेज (दिल्ली 1965-1995) में अध्यापन वृत्ति के बाद 1 नवंबर 1995 में स्वैच्छिक अवकाश प्राप्त करके कोहलीजी साहित्य सेवा करते रहे। महाभारत और रामायण की कथाओं पर आधारित उपन्यास-श्रृंखला से चर्चित थे कोहलीजी।

17 अप्रैल 2021 को दिल्ली में कोरोणा रोगग्रस्त होकर कालजयी कथाकार नरेन्द्र कोहलीजी परलोक सिधारे। हिन्दी के प्रिय कथाकार नरेन्द्र कोहलीजी को भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित करती हूँ।

♦ संपादक
डॉ.पी.लता
मंत्री, अखिल भारतीय हिन्दी अकादमी
(पूर्व अध्यक्षा, हिन्दी विभाग,
सरकारी महिला महाविद्यालय)
फोन : 9946253648

नरेन्द्र कोहली : एक परिचय और उनसे मेरा संबंध

♦ डॉ.के.सी.अजयकुमार

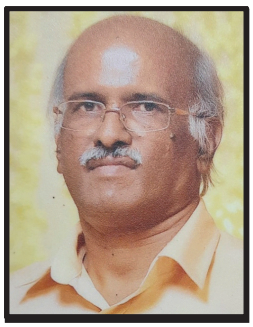

डॉ.नरेन्द्र कोहली हिन्दी साहित्य में उपन्यासकार, कथाकार, व्यंग्यकार, कहानीकार, नाटककार, निबंधकार, बालसाहित्यकार और आलोचक थे। इन विभिन्न साहित्यिक विधाओं में उनकी 100 से अधिक रचनाएँ प्रकाशित हैं।

आज के पाकिस्तान के सियालकोट में 6 जनवरी 1940 को उनका जन्म हुआ था। स्वतंत्रता के बाद उन्होंने बिहार के जंशदपुर में अपनी शिक्षा ज़ारी रखी, जिसका आरंभ उन्होंने लाहोर और सियालकोट में किया था। हिन्दी साहित्य में बी.ए ओणर्स तक वहाँ की शिक्षा पूरा करके दिल्ली में अध्ययन ज़ारी रखकर उन्होंने हिन्दी में एम.ए.और पी.एच.डी प्राप्त कीं। सन् 1965 से दिल्ली के मोतीलाल नेहरु कॉलज में अध्यापक रहे। सन् 1995 में उन्होंने अध्यापनकार्य से सेवानिवृत्ति ले ली और आगे इतने वर्षों तक साहित्यिक-सांस्कृतिक कार्यों में ज़ारी रहते समय 17 अप्रैल, 2021को वे यशःशरीर हुए।

महात्माओं का भौतिक शरीर मिट जाता है, वे यशःशरीर के माध्यम से चिरंजीव रहते हैं।

साहित्य क्षेत्र में उनका पदार्पण सन् 1966 में 'प्रेमचन्द के साहित्य सिद्धान्त' शोध प्रबंध के प्रकाशन के साथ हुआ। फिर एक आलोचना ग्रंथ का प्रकाशन हुआ- कुछ प्रसिद्ध कहानियों के विषय में।

उनका पहला कहानी संग्रह 'परिणति' शीर्षक से सन् 1969 में प्रकाशित हुआ था। व्यंग्य के क्षेत्र में उनकी पहली पुस्तक का प्रकाशन 'एक और लाल तिकोन' नाम से सन्1970 में हुआ।

उपन्यास के क्षेत्र में उनका पदर्पण 'पुनरारंभ' नामक रचना के प्रकाशन से हुआ था, जो सन् 1972 में था। उसमें 19 वीं सदी के आरंभिक चरण के पंजाब का चित्र मिलता है। उनका एक और सामाजिक उपन्यास सन् 1972 में प्रकाशित हुआ जो 'आतंक' नाम से था।

नाटक के क्षेत्र में उनकी प्रसिद्ध रचना है, 'शंबूक की हत्या', जो सन् 1975 में प्रकाशित हुआ।

अभिज्ञान

पौराणिक कथा को औपन्यासिक रूप देते हुए उनका पहला उपन्यास 'अभिज्ञान' नाम से प्रकाशित हुआ था। कृष्ण-कुचेल कथा के माध्यम से अधिकार के स्थानों से सबंध के माध्यम से उपलब्धियाँ पाने की आज की राजनैतिक सामाजिक व्यवस्था का चित्र इसमें खींचा गया है। इसका प्रकाशन सन् 1981 में हुआ था। यह भगवद्गीता में अभिव्यक्त कर्मसिद्धान्त पर केन्द्रित होकर सुदामा और कृष्ण को निकट से जाननेवाली रचना है। इस उपन्यास का मलयाळम रूपान्तर सन् 1999 में प्रकाशित हुआ था।

अभ्युदय

1966-1975 काल में उनकी कई रचनाओं का प्रकाशन हुआ, तो भी सन् 1975 में प्रकाशित 'दीक्षा' उपन्यास बहुचर्चित हुआ। यह रामकथा पर आधारित उनकी उपन्यास शृंखला का पहला खण्ड था। दीक्षा, अवसर, संघर्ष की ओर, साक्षात्कार, युद्ध 1,2 खण्ड इस शृंखला में थे। सन् 1975 में शुरू होकर सन् 1979 में युद्ध 1 और 2 के प्रकाशन से शृंखला का प्रकाशन समाप्त हुआ। फिर समग्र रूप से दो खण्डों में सन् 1989 में 'अभ्युदय' नाम से प्रकाशित हुआ। रामकथा पर आधारित उपन्यास के रूप में इसकी अत्यधिक ख्याति मिली। 'अभ्युदय' नाम से प्रकाशन शुरू होकर भी आगे चलकर 'रामकथा' शीर्षक से राम के भव्य चित्र के साथ आजकल उसका प्रकाशन होता है। रामकथा कई नामों भावों से कई भाषाओं में प्रकाशित है, यह रामकथा का आधुनिक कालीन रूपान्तर माना जा सकता है। आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने इस संबंध में कहा है कि 'रामकथा को आपने नई दृष्टि से देखा है।'

केरल में इसकी हार्दिक स्वीकृति हुई थी। 'दीक्षा' खण्ड ने कालिकट विश्वविद्यालय में पाठ्यक्रम में स्थान पाया था। इसका मलयाळम अनुवाद सन् 2003 में प्रकाशित हुआ था। संभवतः यह हिन्दी से मलयाळम में अनुवाद करके प्रकाशित सबसे बृहत् रचना थी। राम को इस रचना में जननायक के रूप में प्रस्तुत किया है और राक्षस आज के आंतकवादियों का पौराणिक रूप है। पौराणिक कथा पर आधुनिक दृष्टिकोण अन्य पौराणिक, वैदिक, उपनिषदिक कथाओं को लेकर पहले भी हुआ है, लोकिन रामकथा को लेकर इस प्रकार की एक रचना संभवतः पहली बार हो रही थी।

महासमर

'महासमर' नाम से आठ खण्डों में प्रकाशित परम्परा की पृष्ठभूमि महाभारत की कथा है। कुछ और स्पष्ट करूँ तो भीष्म के बचपन से लेकर मृत्यु तक की कथा इन आठ खण्डों में वर्णित है। पर इसमें केवल भीष्म नहीं, महाभारत की कथा के लगभग सभी पात्र उपस्थित होते हैं, उनके भाव, कर्म, क्रिया, प्रतिकिर्या, रोष, आत्मसंघर्ष, आपसी संघर्ष, प्रकृति, सत्य, धर्म, लौकिक अलौकिक जीवन और अध्यात्म इसमें जगह पाते हैं।

आठ खण्ड यानी बंधन, अधिकार, कर्म, धर्म, अंतराल, प्रच्छन्न, प्रत्यक्ष, निर्बंध नामों से ये प्रकाशित हैं। कुल लगभग 4500 पृष्ठों की रचना है। 'बंधन' का प्रकाशन सन् 1988 में हुआ था और 'निर्बंध' का प्रकाशन सन् 2000 में हुआ। यानी कुल 12 वर्ष का समय लगा, यह परम्परा पूरा करने में।

कहा जा सकता है कि 'महाभारत' के युद्धावसान तक की कथा को यथार्थवादी और आधुनिक दृष्टिकोण में उपन्यस्थ किया गया है। केवल कथा नहीं इसमें 'महाभारत' के पात्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण भी प्राप्त होता है।

1. पहला खण्ड 'बन्धन' शान्तनु के काल से लेकर वन में पाण्डु की मृत्यु के बाद पाण्ड़व बचपन में हस्तिनापुर में लौट आने तक की कथा को समेटता है।

2. 'अधिकार' खण्ड में पाण्डवों के हस्तिनापर लौट आने से लेकर युधिष्ठिर के युवराज बनने तक की कथा का चित्र है। अधिकार के सोपान में प्रवेश करने के लिए किये जानेवाले गूढ़तंत्रों की आख्या है। धर्म और अधर्म के संघर्ष की कथा आज की भाषा में चित्रित है।

3.तीसरा खण्ड है 'कर्म'। युवराज युधिष्ठिर के विरुद्ध दुर्योधन के कुतंत्रों का चित्रण इसमें मुख्य है। लाक्षागृह में उनके मर जाने और पांचाल में पुनरुज्जीवन और हस्तिनापुर के दो खण्डों में विभाजन की कथा इसमें है।

4.चतुर्थ 'धर्म' खण्ड खाण्डवप्रस्थ का इन्द्रप्रस्थ बनने और जुआ खेलकर सब कुछ हार जाने तक की कथा है।

5.पांचवां खण्ड 'अन्तराल' पाण्डवों के वनवास की कथा है।

6.छठा खण्ड 'प्रच्छन्न', पाण्डवों की विराट राजधानी में प्रच्छन्न जीवन की कथा है, गोहरण तक।

7.सातवाँ खण्ड युद्ध की तैयारियाँ और कृष्ण के जन्म की कथा 'प्रत्यक्ष' नाम से है। ,

8.गीतोपदेश से लेकर युद्ध और गांधारी का यादव कुल पर अभिशाप और भीष्म के अंत तक की कथा 'निर्बंध' में है।

ये आठों खण्ड मलयाळम में अनूदित होकर प्रकाशित हैं। हिन्दी से मलयाळम में इतनी बृहत औपन्यासिक परम्परा दूसरी कुछ नहीं है। आगे होने की संभावना भी नहीं है।

'महाभारत' के पात्रों को उन्होंने उपन्यास में किस रूप में जगह दी है, उसके पीछे उनका दृष्टिकोण क्या है, इसका वर्णन करते हुए, एक तरह से पात्रावलोकन किया गया है, जहाँ है धर्म, वही है जय नाम से। प्रकाशकों ने इसे महासमर परम्परा के नवें खण्ड के रूप में प्रकाशित किया है, पर सच में वह उपन्यास का अंश नहीं है, 'अनुबंध' मान सकते हैं। इसका भी मलयाळम अनुवाद हुआ है। उन्होंने इसे महाभारत का विवेचनात्मक

अध्ययन माना है। शीर्षक रखा है 'यतोधर्मस्ततो जयः'। जिस प्रकार मलयाळम में 'भारतपर्यटनम्' प्रकाशित है, उसी प्रकार की एक रचना है यह। इसका प्रकाशन सन् 1993 में हुआ था।

इनकी अन्य रचनाओं में प्रमुख है, 'तोड़ो कारा तोड़ो', जो विवेकानन्द के जीवन पर आधारित उपन्यास है। 6 खण्ड प्रकाशित हैं, पर विवेकानन्द का जीवन पूर्णतः इन 6 खण्डों में समाहित नहीं हुआ है। किन्हीं कारणों से वह रचना अपूर्ण रह गई।

इनमें प्रथम चार खण्ड 'न भूतो न भविष्यति' नाम से प्रकाशित हुआ, जिसपर उनको हिन्दी का ख्याति प्राप्त पुरस्कार 'व्यास सम्मान' मिला है। इस रचना का मलयाळम अनुवाद 'विवेकानन्दम्', नाम से प्रकाशित है।

आगे कई कहानी संग्रह, व्यंग्य रचनाएँ, नाटक आदि का प्रकाशन हुआ है, पर इन्होंने थोड़ा मुड़कर भी देखा है, अपने जीवन की ओर। 'स्मरामि' उनका पहला संस्मरण है, जो 2000 में प्रकाशित हुआ था।

सन् 2014 में 'आत्मस्वीकृति' नाम से उनकी आत्मकथा का प्रकाशन हुआ था। प्रकाशकों ने इसे पहली कड़ी कहा है। पर वे चाहते थे कि इसको एकल व्यक्तित्व रहे।

सन् 2017 में 'वरुणपुत्री' नाम से, उनकी एक तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाए, तो एक छोटा सा उपन्यास प्रकाशित हुआ। यह एक नया विशेष प्रयोग था 'पोराणिक कथाओं', इतिहास, समकालीन घटनाओं और फैंटसी का एक अद्भुत ताना-बाना कहा गया है, इस संबंध में।

'महासमर' पर इतने विस्तार से लिखने पर भी वे पूर्णतः संतृप्त नहीं हुए। उनका ऋषिमन समाज को कुछ और कहने को आकुल था। 'शरणम्' नामक उपन्यास उसका परिणाम था। इसका अनुवाद पूरा हुआ। 16 अप्रैल 2021, शाम को इसके मलयाळम् अनुवाद का प्रूफ मुझे ई-मेल से प्राप्त हुआ।15 वीं को 'विवेकानन्दम्' का दूसरा संस्करण मुद्रण के लिए गया। दोनों उनको दिखाने का अवसर नहीं मिला।

उनके साथ मेरे संबंध के बारे में भी कुछ कहना है। सन् 1998 में उनके साथ परिचय हुआ था। उनकी रचनाएँ मेरी पत्नी सिन्धु के शोध का विषय था। 'अभिज्ञान' पर उसका काम शुरू था। मैं ने भी पढ़ा। हमारे बीच चर्चा हुई और लगा कि इसका अनुवाद मलयाळम में आना चाहिए। उनको पत्र लिखा। उत्तर आने में थोड़ी देरी हुई। मेरा एक मित्र उस समय दिल्ली में स्थानान्तरण पाकर गया था। कार्यालय से विदा लेते समय मैं ने उनको कोहली जी के कॉलज का पता दिया। वे सुविधा देखकर उनसे मिलने गये। उनकी रचना का अनुवाद कराने का अनुरोध उनके सामने रखा। एक सप्ताह के भीतर उनका पत्र आया, संतोष व्यक्त करके, अनुमति देते हुए। 7.5 प्रतिशत रॉयल्टी मांगा था। (बाद में उन्होंने उनकी सभी रचनाओं का अनुवाद करके प्रकाशित करने के लिए खुली छूट दे दी)। मैं और सिन्धु ने मिलकर उसका अनुवाद किया। अनुवाद, एक बार कागज़ पर लिखना ठीक है, रोचक है। पर उसका मुद्रण के लिए अंतिम रूप देने हेतु पुनर्लेखन बहुत ही लिपिकीय कार्य है, उबाई है। इसलिए हमने कंप्यूटर खरीदने का निर्णय लिया। उस प्रकार वह कंप्यूटर में लिखा गया। वे भी संतुष्ट हुए, क्योंकि उन्होंने भी कंप्यूटर पर लिखना शुरू किया था।

इस बीच 'स्वतंत्रता-आन्दोलन पर आधारित हिंदी उपन्यास' नामक मेरी पुस्तक प्रकाशन के लिए तैयार हुई थी। हम दिल्ली गये। उनके घर गये। उनकी पत्नी मधुरिमा कोहली जी से सिंधु की मित्रता हुई। उनके दोनों पुत्र भी तब घर पर थे।

आगे सन् 2003 में जब में मैं 'हिन्दीतर भाषी हिन्दी लेखक पुरस्कार' स्वीकार करने दिल्ली गया था, तब भी उनके घर गए। इस बीच 'अभ्युदय' के अनुवाद की अनुमति ले ली। सन् 2003 में ही उसका भी प्रकाशन हुआ। किसी भी दूसरी भाषा में 'अभ्युदय' का अनुवाद नहीं हुआ था। 1300 पृष्ठोंवाली एक रचना का अनुवाद उतना सरल कार्य नहीं था।

आगे उन्होंने 'महासमर' उपन्यास के प्रथम खण्ड को छोड़कर बाकी खण्डों के अनुवाद की अनुमति दे दी। पहले खण्ड के अनुवाद की अनुमति शास्तांकोट्टा देवस्वम् बोर्ड़ कॉलज के प्रोफेसर शशिकुमार जी ने ले ली थी। जब हमारे पुराने स्पीकर जी. कार्तिकेयन जी केरल के संस्कृति कार्य मंत्री थे तब उसका प्रकाशन केरल सरकार के सांस्कृतिक विभाग से हुआ। थोड़ा संक्षेप में कहूँ तो आठों खण्डों का अनुवाद मलयाळम् में हुआ और प्रकाशन भी।

वे केरल में भी आए। विमेन्स कॉलज में डॉ.प्रसन्नकुमारी जी जब अध्यक्षा थीं, तब उन्हें एक संगोष्ठी के लिए वक्ता के रूप में आमंत्रित किया था। वे आए, हमारे घर में रहे। हम मिलकर कन्याकुमारी गए।

दूसरी बार तिरुवनंतपुरम के महात्मागांधी कॉलज में वक्ता के रूप में आए। कॉलज की ओर उनके स्वागत-सत्कार की और आवास की व्यवस्था हुई। मेरी बेटी के साथ उनको लेकर मैं पोन्मुटी गया।

वे भाषा की परिपूर्णता के पक्षपाती थे। प्रत्येक शब्द के प्रयोग को लेकर उनका अभिमत था। उनकी अभी- अभी प्रकाशित रचना समाज जिसमें हम रहते हैं, जीवन, व्यवहार,भाषा,संस्कृति आदि के सबंध में उनके अपने दृष्टिकोण को प्रत्यक्षतः प्रकट करनेवाली है।

मैं कहूँगा, वे साहित्यकार नहीं थे, ऋषि थे। उन्होंने अपना पूरा जीवन हिन्दी भाषा, संस्कृति और राष्ट्र के लिए समर्पित किया था। 'महासमर' नाम से 'महाभारत' की कथा को उन्होंने जिस सांस्कृतिक चेतना से, धर्मबोध से प्रस्तुत किया है, वह महाभारत को लेकर उलटी दृष्टिवाले कई लेखकों और विचारकों के लिए चुनौती है। कुछ लोग हैं, उसे पढ़ने को भी तैयार नहीं हैं, उनको डर है कि उसे पढ़ने से महाभारत की कथा के संबंध में, उनकी जो पूर्वधारणा है, उस पर चोट पहुँचेगी। मेरी प्रार्थना है, इनकी रचनाएँ, विशेष रूप से 'महासमर' को पढ़िए और 'महाभारत' को सीधी दृष्टि से समझने का प्रयत्न कीजिए।

वे 'पद्मश्री' से सम्मानित हुए, 'व्यास सम्मान' से सम्मानित हुए, दिल्ली का 'शालाका पुरस्कार' उन्हें मिला। इस प्रकार हिन्दी प्रदेश के अधिकांश पुरस्कारों से वे सम्मानित हुए। अचानक वे हिन्दी रचना-संसार से चले गए ... वे यशःशरीर हुए। इनकी रचनाएँ कालजयी हैं, उन रचनाओं के माध्यम से वे हर काल में याद रखे जाएँगे।

♦ पूर्व मुख्य प्रबंधक,
कोरपरेशन बैंक।

कृष्ण कथा पर आधारित उपन्यास 'महासमर' : एक अध्ययन

◆ डॉ.पी.के.प्रतिभा

नयी पीढ़ी के समर्थ कहानीकार और उपन्यासकार नरेन्द्र कोहली का नाम समकालीन रचनाकारों में उल्लेखनीय है। आधुनिक युग की संवेदनाओं को लेकर चलनेवाले कथाकारों में वे प्रमुख हैं। उनका रचना-संसार अपने आप में व्यापकता लिए हुए हैं। वे कहानीकार, उपन्यासकार, नाटककार, व्यंग्यकार, निबंधकार, बालसाहित्यकार आदि कई रूपों में मशहूर हैं। हिंदी उपन्यास के क्षेत्र में उनका खास महत्व है। उन्होंने अपने युग का सूक्ष्म एवं वास्तविक अध्ययन किया है। उनके चिन्तन के केंद्र में मानव है। अपने युग की सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक समस्याओं को उन्होंने अपने उपन्यासों के द्वारा उद्घाटित करने का सफल प्रयास किया है। वे परंपरा को नये सिरे से विकास करने में सदैव सफल रहे हैं। उन्होंने पौराणिक कथा को समकालीन संदर्भों में समन्वयात्मक रूप में प्रस्तुत किया है। वे भारतीय अस्मिता और भारतीय संस्कृति से गहरा लगाव रखनेवाले लेखक हैं।

'महाभारत' व्यक्ति और समाज के विकास की गाथा है। 'महासमर' महाभारत के आधार पर लिखा गया नरेन्द्र कोहली का बृहद् उपन्यास है। कृष्णकथा को आधुनिक संदर्भों में मनोवैज्ञानिक ढंग से समग्रता से इस उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है। इसके आठ खंड हैं- 'बंधन'(1988 ई.), 'अधिकार', 'कर्म', 'धर्म', 'अंतराल', 'प्रच्छन्न', 'प्रत्यक्ष' तथा 'निर्बन्ध' (2000 ई.)। प्रत्येक खंड एक दूसरे से संबद्ध होते हुए भी पूर्णतया स्वतंत्र है। इसमें उपन्यासकार ने कथावस्तु का चयन पुराण के आधार पर किया है। मानवीय संवेदनाओं के आपसी सम्बन्धों में अन्तर्द्वन्द्व के कारण यह उपन्यास प्रासंगिक बन पड़ा है। मानवता के शाश्वत प्रश्नों का साक्षात्कार इसका प्रतिपाद्य है। तत्कालीन सामाजिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों का वास्तविक चित्रण इसमें मिलता है। सामाजिक जीवन का सूक्ष्म अध्ययन भी यहाँ मुखरति हुआ है। पर उपन्यासकार का लक्ष्य पुराण को फिर से प्रस्तुत करना नहीं है। पुराण के माध्यम से समकालीन यथार्थ का चित्रण ही उनका उद्देश्य रहा है। उपन्यास का कथानक समकालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक समस्याओं से संबद्ध है। यह सच है कि प्रस्तुत उपन्यास के पात्र वर्तमान परिस्थितियों को पूर्ण रूप से हमारे समक्ष प्रस्तुत करने में सक्षम है। कौरवों के माध्यम से उपन्यासकार ने आज की गन्दी, सड़ी राजनीति की विसंगतियों का चित्रण किया है। कंस के उल्लेख द्वारा शासक वर्ग के अत्याचार का चित्रण भी उपन्यास में मिलता है। भ्रष्ट राजतंत्र की व्यवस्था को उपन्यासकार ने बेनकाब किया है। वर्तमान अवसरवादी राजनीतिज्ञों की ओर भी संकेत मिलते हैं। आज राजनीति में सच का कोई स्थान नहीं है। विरोधियों पर झूठे आरोप लगाये जाते हैं। अपने अधिकार को स्थिर रखने केलिए नीच से नीच काम करने को भी सत्ताधारी हिचकते नहीं। राजनीति में मूल्य नामक चीज़ ही नहीं है। वर्तमान राजनीति भ्रष्टाचार में आकंठ निमग्न

है। शासक हमेशा अपने चाटूकारों से मिलकर षड़यन्त्र और कूटनीति में मग्न रहते हैं। उपन्यासकार ने पुराणकालीन जो अशांत राजनीतिक वातावरण का चित्रण किया है वह आज की राजनीति से मेल खाता है। उन्होंने पौराणिक राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक समस्याओं को आज के देशकाल से बड़ी कुशलता से संजोया है। उपन्यास में सहदेव का कथन वर्तमान राजनीतिक परिदृश्य पर प्रकाश डालता है, "हमारे चारों ओर इसी प्रकार के राजा कुकुरमुत्तों की तरह उग आये हैं। वे प्रजा का पालन करने केलिए नहीं है, प्रजा उनका पालन करने केलिए है।" [1] समकालीन भारतीय राजनीति की विडंबनाओं और विकृतियों का अंकन उपन्यास में देख सकते हैं। व्यवस्था के छल-कपट की ओर भी उपन्यासकार ने अपनी कलम चलाई है।

नरेन्द्र कोहली नारी सम्मान के प्रबल समर्थक हैं। 'महासमर' उपन्यास में उन्होंने नारी विषयक अपनी संवेदनाओं को भली भाँति उजागर किया है। प्रतिशोध, महत्वाकांक्षा, विद्रोह आदि भिन्नभिन्न भावनाओं से युक्त द्रौपदी, गांधारी, अंबा, अंबिका, अंबालिका, सत्यवती, कुंती, माद्री आदि पात्रों के द्वारा तत्कालीन समाज की नारी की स्थिति का चित्रण करके उन्होंने यह दिखाने की कोशिश की है कि नारी का अपमान समाज के पतन का मूल कारण है। 'महासमर' के प्रच्छन्न खंड में उन्होंने नारी की महिमा को इस प्रकार दर्शाया है- "स्त्री पत्नी प्राप्त जाए तो मित्र हो जाती है। पत्नी तो पति की दैवकृत सहचारी है।"[2] भारतीय समाज में शताब्दियों से उपेक्षित नारी पुरुष के अत्याचारों से पीडित रही है। नारी की अनंत पीड़ा और अनवरत शोषण का चित्रण उपन्यासकार ने किया है। द्रौपदी पुरुषप्रधान सत्ताधारी वर्ग से पीड़ित नारी की प्रतिमूर्ति है। पुरुष प्रधान समाज हमेशा नारी को दूसरे दर्जे का मानकर उसे कई बंधनों में बांधते हैं। दूसरों का मनोरंजन करना ही उनके होने का उद्देश्य समझा जाता है। नारियाँ शासक वर्ग की कपुतलियाँ बन जाती हैं। नारी को वे सिर्फ भोगवस्तु मानते हैं। सत्ताधारी वर्ग के पैरों तले कुचलनेवाली नारी की विक्षिप्तता का चित्रण कोहलीजी ने किया है। पौराणिक कथा के माध्यम से समकालीन आधुनिक नारी के जीवन के विभिन्न पहलुओं को भी सफलतापूर्वक उजागर करने की कोशिश की है। सारी कथा को सामयिक सन्दर्भों में मानवीय धरातल पर प्रस्तुत किया गया है। पीड़ित नारी की विवशता का दिग्दर्शन कराना उपन्यास का उद्देश्य रहा है। "धन लेकर कन्यादान शुद्ध रूप से पुरुषप्रधान समाज की पैशाचिक वृत्ति थी। उसमें नारी को किसी प्रकार का कोई अधिकार नहीं था। वह किसी पशु या पदार्थ के समान अपने पिता अथवा भाई की इच्छा से किसी पुरुष को भी, कोई शुल्क देकर प्रदान की जा सकती थी।" [3]

'महाभारत' में प्रतिपादित धर्म का स्वरूप तो मानव जीवन का शाश्वत सत्य है। साथ ही मानवीय सम्बन्धों से जुड़े सत्य जो थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ प्रत्येक युग में विद्यमान होते हैं शाश्वत प्रश्न के रूप में स्वीकार किये जा सकते हैं। पति-पत्नी-पुत्र का सम्बन्ध जिसे शान्तनु-गंगा-भीष्म प्रसंग के रूप में उठाया गया है, आज भी उतना ही प्रासंगिक है, जितना महाभारत के समय था। महाभारत की कथा मानवीय सम्बन्धों के वैविध्य की दृष्टि से इतनी समृद्ध है कि उसकी सम्भावनाओं की सीमा निर्धारित नहीं की जा सकती। नरेन्द्र कोहली के 'महासमर' में उन सम्भावनाओं को सर्जनात्मक रूप देने की कोशिश की है।

कृष्ण कथा के माध्यम से लेखक ने मानवता के शाश्वत प्रश्नों का साक्षात्कार करता है। डॉ.नरेन्द्र कोहली ने कृष्ण को धार्मिक दृष्टिकोण से निकालकर उज्ज्वल छवि के साथ गौरवशाली व्यक्तित्व के रूप में प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है। उनके कृष्ण न्याय के प्रबल समर्थक हैं। उनकी सारी शक्तियाँ राष्ट्र की समृद्धि हेतु समर्पित हैं। आधुनिक परिप्रेक्ष्य में भी वे हमारे आदर्श हैं। पौराणिक कथा साहित्य में प्राप्त देश और काल की चेतना जिस सन्दर्भ में उपस्थित हुई है, आधुनिक काल में आकर आधुनिक काल की चिन्तन धाराओं के साथ मिलकर एकाकर होती दिखाई देती है। कृष्ण कथा को आधुनिक सन्दर्भ में मनोवैज्ञानिक ढंग से समग्रता से प्रस्तुत करने के अर्थ में डॉ.नरेन्द्र कोहली का अपना विशिष्ट स्थान है। कृष्ण कथा पर आधारित उनकी कृति 'महासमर' में कृष्ण का प्रवेश 'अधिकार' नामक द्वितीय खंड में होता है। और द्वितीय खंड से लेकर अंतिम खंड 'निर्बंध' तक कृष्ण का प्रभाव बना रहता है। कृष्ण के चरित्र की विशिष्टताओं को कोहलीजी ने अत्यधिक आकर्षक ढंग से प्रस्तुत किया है।

कृष्ण ने ऊँच-नीच की परवाह किये बिना न्याय और नीति को सब केलिए समान माना। इसलिए उन्होंने अर्जुन से खुलकर कहा "मैं न तुम्हारे पक्ष में हूँ, न दुर्योधन के पक्ष में। मैं, तो धर्म के पक्ष में हूँ।"[4] कोहली महासमर में कृष्ण के स्वरूप को उनके कथन के साथ-साथ अन्य पात्रों के वार्तालाप के माध्यम से भी अभिव्यक्त करते हैं। उनके कृष्ण के चरित्र में ईश्वरत्व के साथ-साथ वर्तमान संवेदनशील मानव का सुंदर समन्वय है।

महासमर के 'बंधन' शीर्षक प्रथम खंड में शांतनु, सत्यवती तथा भीष्म की कथा है। सत्यवती के हस्तिनापुर में आने से लेकर हस्तिनापुर से विदा लेकर जाने तक कथा समाप्त होती है। अपने पिता केलिए देवव्रत(भीष्म) जीवन भर अविवाहित रहने की प्रतिज्ञा करके केवट कन्या सत्यवती को हस्तिनापुर लाते हैं। बाद में अपनी पत्नी सत्यवती और दोनों पुत्र चित्रांगन और विचित्रवीर्य के दुर्व्यवहार से त्रस्त होकर शान्तनु की मृत्यु होती है। पिता की मृत्यु के बाद भीष्म हस्तिनापुर में घटित सभी प्रकार की गतिविधियों के मूक साक्षी बनते हैं। सत्यवती की महत्वाकांक्षा ही उनके पतन का कारण बन जाती है। यहाँ पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व को मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

'महासमर' का दूसरा खण्ड 'अधिकार' की कथा हस्तिनापुर में पांडवों के शैशव से आरंभ होकर उपन्यास के नायक युधिष्ठिर के युवराज्याभिषेक तक चलती है। इसमें अधिकार प्राप्त करने केलिए किये जानेवाले क्रिया-कलापों का वर्णन है। धृतराष्ट्र, कुंती और पांडवों को राजभवन से हटाकर पुराने खंडहर भेज देता है। यहाँ युधिष्ठिर खांडवप्रस्थ की अराजकता के धर्मसंकट में है। हस्तिनापुर की कपट नीति के कारण कुंती अत्यधिक दुखी है। वे विदुर से कहती हैं तो विदुर उसे सांत्वना देते हुए कहते हैं "मैं तो मात्र यह कह रहा था कि यदि अधर्म संगठित हो रहा है, तो धर्म को भी संगठित होना चाहिए।...मुझे लगता है कि हम यह भूल जाते हैं कि जरासंध एक शक्ति है तो कृष्ण भी तो एक शक्ति है।"[5] युधिष्ठिर के राज्याभिषेक के समय कृष्ण के प्रवेश को मुख्य घटना के रूप में चित्रित किया गया है।

तीसरा खण्ड 'कर्म' में युधिष्ठिर के युवराज्याभिषेक के पश्चात् से लेकर दौपदी स्वयंवर के बाद पांडवों के पुनः हस्तिनापुर आने तक की कथा वर्णित है। इस खण्ड में कर्मयोगी कृष्ण के आगमन से

पात्रों के बीच का संघर्ष कम करने का सफल प्रयास किया गया है। कृष्ण अर्जुन से कहते हैं- "हाँ अर्जुन! धर्म के मार्ग में आसक्ति केलिए कोई स्थान नहीं है। अनासक्त विवेक ही हमें धर्म के मार्ग पर चला सकता है।"[6] युधिष्ठिर भी हिंसात्मक युद्ध का विरोध करते हैं। उपन्यासकार ने युधिष्ठिर को मानव मूल्यों के प्रणेता के रूप में चित्रित किया है। पांडवों को कई प्रकार के षड्यंत्रों का सामना करना पड़ता है। इसी कारण से लेखक ने पात्रों के अन्तर्द्वन्द्वों को गहराई से चित्रित करके तत्कालीन समाज में व्याप्त विसंगतियों की ओर इशारा किया है।

चौथा खण्ड 'धर्म' में पांड़वों को राज्य के रूप में खांडवप्रस्थ मिलने से लेकर द्रौपदी के चीरहरण तक की कथा का वर्णन है। यहाँ अर्जुन का वनवास, खंडव वन दहन, राजसूय यज्ञ, जरासंध वध, द्यूतक्रीड़ा, भीष्म और द्रौपदी की प्रतिज्ञा आदि का वर्णन है। यहाँ युधिष्ठिर और अर्जुन धर्मसंकट में पड़ा हुआ दिखाई देते हैं। इस अवसर पर युधिष्ठिर से कृष्ण का कथन ध्यान देने योग्य है। "ईश्वर ने मनुष्य को कर्म का अधिकार दिया है। फल ईश्वर के नियमों के अधीन है। फल तो वही देगा, किंतु कर्म तो मनुष्य को ही करना होगा। कर्म न कर मनुष्य अकर्म का दोषी होगा। तब वह ईश्वर द्वरा भी दंडित होगा।"[7]

पाँचवाँ खण्ड 'अंतराल' में द्यूत हारने के पश्चात् पांडवों के वनवास की कथा और द्रौपदी द्वारा अर्जुन को युद्ध करने की प्रेरणा देना आदि का वर्णन है। यहाँ कोहलीजी कृष्ण के द्वारा यही कहते हैं कि सतोगुणी प्रवृत्तियाँ सत्कर्मों के द्वारा ही विकसित होती हैं। 'प्रच्छन्न' नामक छठे खण्ड में पांडवों के वनवासकाल में दुर्योधन का पांड़वों से शीत युद्ध, यक्ष प्रश्न और पांडवों द्वारा विराट नगर में अज्ञातवास आदि घटनाओं का वर्णन है। सातवाँ खण्ड 'प्रत्यक्ष' में युद्ध का जीवंत वर्णन है। अर्जुन शिखंडी को सामने रख भीष्म पितामह को आहत करते हैं और अंत में जीवन परिस्थितियों और घटनाओं सहित युग से हताश भीष्म को एक क्षत्रिय की गौरवपूर्ण मृत्यु देने केलिए सहयोग करते हैं। इसमें कर्ण और कुंती का भी प्रत्यक्ष साक्षात्कार कराता है। यहाँ कृष्ण अर्जुन को स्वधर्म का ज्ञान कराकर, गांड़ीव उठाकर उसे युद्ध केलिए प्रेरित करता है। उस दिव्य अनुभूति के परिणामस्वरूप अर्जुन गांड़ीव उठाकर उस धर्म युद्ध केलिए, स्वधर्म के परिपालन केलिए प्रस्तुत हो गए।

'महासमर' का अन्तिम खंड 'निर्बंध' है। भीष्म पितामह के शरीर-त्याग के साथ यह खण्ड समाप्त होता है। यह केवल शस्त्रों का ही युद्ध नहीं। यहाँ यह दिखाया गया है कि वर्तमान समय में मानव को अपने बाहर से अधिक भीतरी युद्ध से लड़ना पड़ता है। यह टकराहट मूल्यों और सिद्धान्तों की है। कृष्ण युधिष्ठिर को विध्वंस की क्षतिपूर्ति करके विकास की प्रक्रिया को अग्रसर करने को कहते हैं। यदि मनुष्य अपने धर्म पर अड़िग रहकर इस भीतरी महायुद्ध में सफल हो जाता है तो वह सच्चे अर्थों में निर्बंधित हो जाता है।

इस प्रकार कोहली ने कृष्ण की परंपरागत कथा को आधार बनाकर उसे नवीन धरातल पर नवीन पृष्ठभूमि के साथ युगधर्म को रूपायित करते हुए उपस्थित किया है। कृष्ण को वैज्ञानिकता के आधार पर प्रस्तुत किया है। कृष्ण कर्मफल सिद्धान्त पर विश्वास करते हैं। उन्होंने अपने युग की समस्याओं को, अपने युग की कथा को कृष्ण कथा के माध्यम से अपने युग के लोगों तक पहुँचाने का सार्थक प्रयास किया है। पुरातन कथा को नवीन रंगों से उकेरकर कथा की घटनाओं तथा

चरित्रों को समकालीन मनोविज्ञान, चिन्तन तथा संस्कृति के सूत्रों में पिरोया है।

दुर्योधन को जीवन में जितनी भी सुविधाएँ मिलीं उससे उसे तृप्ति नहीं मिली। पांडवों को अपमानित करने की योजनायें निरंतर बनाता रहा। महासमर की गाथा मनुष्य के उस अनवरत युद्ध की गाथा है, जो उसे अपने बाहरी और भीतरी शत्रुओं के साथ निरंतर करना पड़ता है। वर्तमान समय में मानव एक ऐसे संसार में रहता है जिसमें चारों तरफ लोभ और स्वार्थ की शक्तियाँ संघर्षरत हैं। बाहर से अधिक उसे अपने भीतर से लड़ना पड़ता है। इस आन्तरिक संघर्ष का चित्रण उपन्यास में कई स्थानों पर मिलता है जो वर्तमान मानव की नियति है। वर्तमान समय में व्याप्त राजनीतिक भ्रष्टाचार, सामाजिक अन्याय, अत्याचार, शोषण, अवसरवादिता आदि सभी के दर्शन उपन्यास में होते हैं। जो अतीत में था वह वर्तमान भी है। इसलिए महाभारतकालीन पात्र और घटनायें उपन्यास के माध्यम से हमारे जीवन से जुड़ी समस्याओं के समीप आ गई हैं। कोहली जी संवेदनील रचनाकार हैं। मानव मात्र के प्रति उनके मन में करुणा है। इसलिए समाज की पीड़ा को उन्होंने अपने परिवेश से लेकर राष्ट्र की पीड़ा के बीच अनुभव किया है।वे मानव समस्याओं को समझाने के प्रति प्रतिबद्ध दिखाई देते हैं।

उन्होंने लिखा है कि उन्होंने पौराणिक इतिहास या साहित्य को उस रूप में स्वीकार नहीं किया कि वह किसी युग अथवा सृष्टि की वस्तु है। क्योंकि प्रकृति के नियम बदलते नहीं हैं। यदि 'कर्म सिद्धान्त' कृष्ण के समय संभव था तो आज भी है। इस प्रकार कृष्ण की परंपरागत कथा को आधार बनाकर उसके चरित्रों और चरित्र सम्बद्धी कथाओं को नये धरातल पर नयी पृष्ठभूमि के साथ युगधर्म को रूपायित करते हुए उपस्थित किया है।

समकालीन परिवेश को दृष्टिपथ पर रखकर ही कोहली जी ने इस उपन्यास का सृजन किया है। पांडवों और कौरवों की कहानी के द्वारा तत्कालीन समाज में प्रचलित विधि-विधानों की चर्चा प्रस्तुत उपन्यास में हुई है। पाडवों की राजनीति पर उपन्यासकार ने विशेष रूप से बल दिया है। जितनी प्रतिकूल अवस्थाओं का सामना करने पर भी वे धर्म से विचलित नहीं होते। कई बार प्रताड़ित होते हुए भी वे प्रतिशोध की भावना नहीं रखते हैं। मानवीय मूल्यों की स्थापना करने की उदात्त कल्पना लेखक ने हमारे सामने रखी है। आज की राजनीति में भी कूटनीति से शत्रु को प्रहार करने के दृश्य देख सकते हैं। किसी भी प्रकार सत्ता पर अटल रहना नेता चाहते हैं। महासमर को जीतने केलिए शौर्यबल के साथ-साथ नैतिक बल की आवश्यकता है, यही उपन्यास का सन्देश है। पौराणिकता को आधार बनाकर कथानक का ताना-बाना बुना गया है। इस उपन्यास के द्वारा उपन्यासकार ने गंभीर चिंतन प्रस्तुत किया है। उपन्यास में सरल कथोपकथन, प्रवाहमयी भाषा, सहज, सुबोध जीवन्त शैली का प्रयोग हुआ है। घटनायें क्रमबद्ध तरीके से सजायी गयी हैं।

औद्योगिक और वैज्ञानिक क्रांति के इस युग में समसामयिक बोध के धरातल पर सामाजिक विसंगतियों का चित्रण उपन्यास में मिलता है। रूढ़िवादी परंपरा, समाज के विभिन्न वर्गों की विषमता आदि जीवन की विविध समस्याओं का मार्मिक चित्रण किया गया है। वर्ण और जाति के नाम पर संघर्ष वर्तमान समाज का सबसे बड़ा अभिशाप है। उपन्यास में कर्ण ने समाज में व्याप्त वर्ग भेद, सामाजिक वैषम्य आदि व्यवस्था का

विरोध प्रस्तुत किया है। विद्या का अधिकार सबको नहीं मिलता था। शिक्षा और ज्ञान पर ब्राह्मण और क्षत्रियों का आधिपत्य था। कर्ण के माध्यम से जातीय शोषण की समस्या को प्रस्तुत किया गया है। क्षत्रियों के व्यवहार से नाराज़ होकर कर्ण कहते हैं, "शिक्षा और ज्ञान क्या ब्राह्मण और क्षत्रिय पुत्रों की बपौती है।"[8]

कोहलीजी ने पौराणिक घटनाओं के अविश्वसनीय अंश को समकालीन सन्दर्भों के उपयुक्त विश्वसनीय कथानक में परिवर्तित करके प्रस्तुत किया है। इससे उपन्यास की प्रासंगिकता बढ़ गयी है। महाभारत की कथा के अनेक प्रसंगों की नयी व्याख्या की है। द्रौपदी चीरवृद्धि प्रसंग में कृष्ण के द्वारा वस्त्र बढ़ाये जाने की पौराणिक चमत्कारिक मिथकीय घटना को कुछ कथात्मक मोड़ों सहित विश्वसनीय ढंग से प्रस्तुत किया। इस प्रसंग को बड़े मनोवैज्ञानिक और तार्किक शैली में प्रस्तुत करके अपनी आधुनिक दृष्टि का परिचय दिया है।

अन्याय और अनीति के दुष्परिणाम को दिखाकर धर्म की स्थापना द्वारा उपन्यासकार का उद्देश्य मानवीय मूल्यों की स्थापना करना है। पौराणिक कथा साहित्य में प्राप्त चेतना को आधुनिक काल की राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर घटित घटनाओं के साथ मिलाकर एकाकार होती दिखाई देती है। मूल कथा में परिवर्तन किये बिना लेखक ने अपने विचार प्रकट किये हैं। कोहली जी ने बदलते हुए जीवन मूल्य तथा बदलते हुए परिवेश को बड़ी तत्परता के साथ चित्रित किया है। काम, कोध, शत्रुता, विरोध, अहंकार आदि प्रवृत्तियाँ हमें पतन की जिस गहराई में ले जायेंगी, इसका स्पष्ट उदाहरण इस उपन्यास के माध्यम से लेखक ने दिया है। इस उपन्यास के द्वारा उन्होंने सामाजिक प्रश्नों और समस्याओं को किसी एक ही दृष्टि से न उठाकर उनकी समग्रता में उठाया है। कृष्ण एक ऐसा चरित्र है जो किसी भी देशकाल, युग में अधर्म और अन्याय का विरोध करने की ताकत प्रदान करते हैं। पात्रों का व्यक्तित्व स्पष्ट, मनौवैज्ञानिक एवं प्रभावशाली है। यह अनेक दृष्टिकोणों से मौलिक रचना बन पड़ी है तथा प्रासंगिक भी है। वर्तमान परिवेश में सामाजिक, राजनीतिक समस्याओं के और उनके समाधानों की ओर संकेत करते हैं। उन्होंने प्राचीनता को वैज्ञानिकता के आधार पर अपने विवेक के साथ आधुनिक सन्दर्भों में प्रस्तुत किया है। उपन्यास के पात्रों को उसी रूप में चित्रित किया है, जो वर्तमान समाज केलिए ग्राह्य हो सके। उपन्यास केलिए पौराणिक कथाओं का सार्थक ढंग से उपयोग किया जा सकता है, इसका उत्तम दृष्टान्त है नरेन्द्र कोहली जी का 'महासमर' उपन्यास।

सन्दर्भ -

1. नरेन्द्र कोहली, महासमर, 1993 धर्म, पृ.147
2. नरेन्द्र कोहली, महासमर, प्रच्छन्न, पृ.315
3. नरेन्द्र कोहली, महासमर, बंधन, पृ.157
4. नरेन्द्र कोहली, महासमर, कर्म, पृ.363
5. नरेन्द्र कोहली, महासमर, अधिकार, पृ.319
6. नरेन्द्र कोहली, महासमर, कर्म, 363
7. नरेंन्द्र कोहली, महासमर, धर्म, पृ.248
8. नरेन्द्र कोहली, महासमर, पृ.418

♦ सह आचार्या, हिंदी विभाग,
श्री नीलकंठ सरकारी संस्कृत कॉलेज,
पट्टाम्पि, पालक्काट-679304

'वरुणपुत्री' मिथक और समसामयिकता की फैंटसी में झलकता युगीन यथार्थ

♦ डॉ.पी.गीता

नरेंद्र कोहली हिन्दी साहित्य के बहुमुखी प्रतिभासंपन्न साहित्यकार हैं। वे मुख्य रूप से कथाकार के रूप में विख्यात हैं, परंतु उपन्यास और कहानी के अलावा उन्होंने नाटक, निबंध, आलोचना, व्यंग्य जैसी प्रमुख गद्य विधाओं में अपनी रचनाशीलता का परिचय दिया है। इस दृष्टि से स्वतंत्रता के बाद के प्रतिष्ठित लेखकों में उनका नाम विशेष उल्लेखनीय है। मिथक को आधुनिक संदर्भ से जोड़कर उन्होंने कई महत्वपूर्ण सर्जनाएँ कीं। लेकिन इन रचनाओं में न तो पुराण का अंधानुकरण है और न नवीनता या बौद्धिकता की अतिवादिता है। उनकी दृष्टि संयमित और प्रगतिशील है, इसलिए भारतीय संस्कृति की जड़ों में छिपे हुए कई तथ्यों की समकालीन संदर्भ में उन्होंने पुनःसृष्टि की। रामायण, महाभारत आदि पर आधारित उनके बृहदाकार उपन्यास इसके ज्वलंत उदाहरण हैं। बीस से ज़्यादा उपन्यास, करीब दस कहानी-संग्रह, आठ नाटक, दर्जनों व्यंग्य-संग्रह, निबंध-संग्रह, आलोचनात्मक ग्रंथ,बाल-साहित्य आदि उनकी रचनाधर्मिता की व्यापकता और गहराई का परिचायक है। सन् 2012 में व्यास सम्मान और सन् 2017 में पद्मश्री से राष्ट्र ने उनको सम्मानित किया है।

'वरुणपुत्री' नरेंद्र कोहली की वास्तविक रचना-धर्मिता से थोड़ा हटकर लिखी गई रचना है। इसे एक कोलाज(collage) कहा जा सकता है। इसमें मिथक, राजनीति, संस्कृति, वैज्ञानिकता, पारिस्थितिकी, समकालीन राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्थितियाँ आदि का अजीबोगरीब ताना-बाना देखा जा सकता है। पात्रसृष्टि में भी यह मिश्रण हुआ है। वरुणपुत्री, विक्रम, मत्स्यकन्या जैसे पात्र पौराणिक छवि से युक्त हैं, तो विनोद, संजीव,राजीव जैसे पात्र आधुनिक हैं। उपर्युक्त कोलाजीय परिवेश के कारण उपन्यास में क्रमबद्धता भी उतनी नहीं है, चाहे वह कथ्य के स्तर पर हो या शिल्प के स्तर पर। फैंटेसी और यथार्थ का, एक प्रकार से आँखमिचौनी का खेल होने के कारण पठनीयता में भी क्रमानुगतता संभव नहीं है। इसके बावजूद अपने महान उद्देश्य की दृष्टि से प्रस्तुत उपन्यास को प्रतिबद्धता से भरपूर एक विशिष्ट प्रयोग कहा जा सकता है । इसके मद्देनज़र उपन्यास की शैल्पिक कमियों और पठनीयता की बाधाओं को एकदम नज़रअंदाज़ किया जा सकता है। यह सात अध्यायों में विभाजित 133 पृष्ठोंवाला छोटा उपन्यास है।

उपन्यास की शुरुआत द्वारका से होती है। विक्रम अपने बाप, सौतेली माँ, उनके दो पुत्र आदि के साथ द्वारका आया था। ये पारंपरिक रूप से धार्मिक नहीं हैं, यहाँ पहुँचने के पीछे घूमने का शौक ही बड़ा कारण है। विक्रम सागरतट पर आ बैठा। वहाँ मन न लगने के कारण कहीं दूर के बीच (beach) में ड्राईवर के कहने पर गया। विक्रम का पिता अमीर था। लेकिन विक्रम को संपत्ति पर कोई रुचि नहीं थी। वह प्रकृति से प्यार करता है। प्रकृति में लौटना उनके लिए सदा से माँ की गोद में लौटना जैसा था। विक्रम को सागर ऐसा लगा कि वह सारा सागर श्रीकृष्ण का रूप है । सागर के रूप

में स्वयं श्रीकृष्ण ने अपनी द्वारका को घेर रखा था, श्रीकृष्ण ही लहरों के रूप में उससे लिपटने के लिए उसके पीछे-पीछे आ रहे थे। एक ऊँची और विशाल लहर को आते देख जब वह वहाँ से भाग जाने के लिए पलटा, तब राजसी वेशभूषा में एक गरिमामयी, ममतामयी, असाधारण सुंदर युवती ने उसकी भुजा थाम ली। वह आकाशगंगा के तीसरे ग्रह की निवासी वरुणपुत्री थी याने एलियन (alien)। वरुणपुत्री ने विक्रम के शरीरतंत्र को ऐसा बना दिया है कि वह वायु और जल में समान रूप से श्वास ले सका।

वरुणपुत्री ने अंतर्दृष्टि से जान लिया कि विक्रम दिल्ली में रहता है, उसके पिता का दस मंज़िला भवन है। वह बताती है कि विक्रम के पिता की स्त्री पिता की पत्नी होने पर भी विक्रम की माँ नहीं है, वह स्त्री विशाल सागर की एक विराट मछली की संतान है। लेकिन जब एक वैज्ञानिक ने उस मछली की जाँच-पड़ताल की जिसके पेट में एक कन्या थी, उनको मालूम हो गया कि उसका मन अत्यंत निम्न कोटि का था, उसमें मानवता का कोई गुण नहीं था। यहाँ वरुणपुत्री, श्रीकृष्णपुत्र प्रद्युम्न और शांतनु की दूसरी पत्नी सत्यवती का भी ज़िक्र करती है। इस मत्स्यकन्या को अपने कर्मफल के परिणामस्वरूप ही ऐसा जन्म लेना पड़ा। वह महत्वाकांक्षी, स्वार्थी, भौतिक सुखों में लिप्सा रखनेवाली अमानवीय नारी थी। उसको अधिकार का मोह था, संसार की महंगी से महंगी चीज़ों का मोह था। बल्कि वह असाधारण सुंदरी थी, वैज्ञानिक ने उसका विवाह एक अरबपति धनाढ्य से कर दिया जो लंपट भी था। वह विक्रम के पिता की दूसरी पत्नी है। वह अपने लिए कोई वैज्ञानिक जानकारी लेने के लिए प्रयोगशाला में गया तो उस स्त्री को पत्नी बनाकर ले आया ।

वरुणपुत्री आकाश से टपक पड़ी तो दिल्ली के इंडिया गेट पर आई । वहाँ विनोद सीकर नामक अमीर से मुलाकात हुई जो आधे नगर का स्वामी है । देखते ही उसने वरुणपुत्री के रूपसौंदर्य पर आकृष्ट होकर शादी करने की इच्छा प्रकट की । एक हफ्ते के बाद वह तैयार हो गई । वह नारी को अबला माननेवाला लंपट पुरुष था । शर्तों को स्वीकार करने के लिए वह तैयार हो गया। शर्तें ये थीं कि कभी भी पूर्व जीवन के बारे में कुछ न पूछना, कहाँ आती-जाती है उस विषय में प्रश्न नहीं करना, संबंध-विच्छेद करते समय रोकना मत। विक्रम के जन्म होते ही एक वर्ष पूरा होने के कारण उसे अपना ग्रह लौटना पड़ा। लेकिन वह लंपट, कामलोलुप पुरुष किसी सुंदर स्त्री के बिना जी नहीं सकता था। इसलिए सत्यवती जैसी एक मत्स्यकन्या से शादी की। वह दुर्गुणों से युक्त स्त्री थी। उसमें मातृत्व की भावना भी नहीं थी ।

वरुणपुत्री विक्रम को समुद्र का अंतर्भाग दिखाने के लिए ले जाती है। उसने अनेक दृश्य देखे। वैज्ञानिकों के अल्प ज्ञान की ओर संकेत करके बताया गया है कि वैज्ञानिक समुद्र को पानी का निर्जीव समूह मानते हैं। लेकिन वरुणपुत्री की राय में समुद्र सजीव नहीं, चेतन प्राणी है। सागर अपने अधिकारों और दायित्वों को भी अच्छी तरह जानता और समझता है। वरुणपुत्री एक महान् दर्शन का पर्दाफाश करती है कि सृष्टि में जो कुछ भी हैं, वे सब उस एक चैतन्य का ही प्रकटीकरण है। उस चैतन्य का, जिसे हम ब्रह्म कहते हैं। वह बताती है कि वाल्मीकि ने समुद्र को चैतन्य जीव के रूप में देखा था। यहाँ वह इस बात का उल्लेख भी करती है कि स्वामी रामतीर्थ को गंगा नदी अपने भीतर कैसे ले गई।

यहाँ नदी में जो चेतना है उसकी ओर संकेत किया गया है ।

इस उपन्यास में द्वारका का विस्तृत वर्णन है। वरुणपुत्री सागर के अंदर पड़ी हुई द्वारका को विक्रम को दिखाती है। श्रीकृष्ण ने किस प्रकार इस नगरी को बसाया, इसका विस्तृत वर्णन है । श्रीकृष्ण इस स्वर्ण नगरी के सिंहासन पर नहीं बैठे, फिर भी उन्हें द्वाराकाधीश कहा जाने लगा । उनके जीवन का उद्देश्य एक ऐसे राज्य की स्थापना था जो सत्य और धर्म के सिद्धांत पर आधारित हो । 'द्वार' का अर्थ दरवाज़ा है और 'का' का अर्थ ब्रह्मा। वैसे 'द्वारका' को ब्रह्म लोक का द्वार माना गया। दूसरे शब्दों में आध्यात्मिक रूप से मुक्ति का द्वार है । वरुणपुत्री से बताया गया है कि द्वारका, जिसको समुद्र लील गया है, की जो वस्तुएँ जल से मिली हैं, वे सिद्ध करती हैं कि ये वस्तुएँ ईसा के जन्म से साढ़े सात सहस्त्र वर्ष पुरानी हैं। वरुणपुत्री कहती है कि धरती ने भी सरस्वती जैसी अनेक नदियों को लील लिया है। पुरातत्व के वैज्ञानिक अब भी इस पर शोध कर रहे हैं। भोपाल के एक आश्रम का ज़िक्र करके पारिस्थितिक तंत्र की एक अद्‌भुत स्थिति के बारे में बताया गया है। वहाँ जो व्यक्ति सर्प को मारेगा, उसे आश्रम से निकाल दिया जाएगा। प्रकृति के खेल के कारण सर्प के बढ़ते-बढ़ते नेवले और चीलें भी बढ़ गईं । यह प्रकृति का संतुलन है। जब मनुष्य इस संतुलन को नष्ट कर देता है तब सर्वनाश होता है ।

उपन्यास में भारत के बुद्धिजीवियों के खोखले संस्कार पर व्यंग्य करते हुए कहा गया है कि वे अपने देश संबंधी गौरवशाली तथ्यों को नकारते रहते हैं। उनकी बुद्धि राक्षसबुद्धि है, वे अपने देश और अपनी संस्कृति के शत्रु हैं। यह इस देश की मानसिक दासता है। वे विदेशी संस्कृति को आदर के साथ अपनाते हैं । विदेशी चले गए, बल्कि दासता अब भी बरकरार है। किशन पटनायक ने ठीक ही कहा है कि "भारतीय बुद्धिजीवी को जब पश्चिमी सभ्यता अधूरी लगती है, तब वह प्राचीनता की किसी गुफा में घुस जाता है और जब वह अपनी सभ्यता के बारे में शर्मिंदा होता है तब पश्चिम का उपनिवेश बनकर रहना स्वीकार लेता है"।[1] उपन्यास में इसका ज़िक्र है कि सन् 2000 में द्वारका के खंडहरों के खोजे जाने के पश्चात् उस प्राचीन कथा को बुद्धिमान इतिहासकारों को तथ्य मानना ही पड़ा। इन खंडहरों को देखकर हम जान लेते हैं कि उसका निर्माण करनेवाले, गणित और ज्योमिति के प्रकांड विद्वान थे । यहाँ झूठी कथा कहकर भक्तों को झुठलानेवाले अज्ञानी आधुनिक पुरोहितों पर भी व्यंग्य है और बताया गया है कि पाखण्डियों को भागवत अवश्य पढ़ना है।

जैसा कि कहा गया है, 'वरुणपुत्री' एक से अधिक विषयों को केंद्र में रखकर लिखा गया सोद्देश्य उपन्यास है। इसके बावजूद उपन्यास का केंद्र कथ्य पारिस्थितिक चिंतन ही लगता है। इस पारिस्थितिक चिंतन की खासियत यह है कि इसका संदर्भ एकदम समकालीन है, अर्थात् इक्कीसवीं सदी के दूसरे दशक की गतिविधियों के परिप्रेक्ष्य में है। वर्तमान समय में परिस्थिति का बहुआयामी शोषण हो रहा है, जिसके पीछे सिर्फ एक छोटा समाज नहीं है, अपितु राष्ट्रीय राजनीति, अंतर्राष्ट्रीय राजनीति, भूमंडलीकरण, सत्ता की लोलुपता, संस्कृति की ह्रासोन्मुखता आदि कई तत्व काम कर रहे हैं। नरेंद्र कोहली ने इस संश्लिष्ट परिवेश में दम घुटती पारिस्थितिकी पर अपने ठोस विचार प्रस्तुत किए हैं।

उपन्यास में प्रकृति और जीवजंतुओं की खासियत के बारे में बताया गया है कि ये सारे जीवजंतु तब तक मनुष्य को कोई हानि नहीं पहुँचायेंगे जब तक हम उन पर

प्रहार नहीं करेंगे । वे या तो अपने भोजन के लिए आखेट करते हैं या आत्मरक्षार्थ । वे मनुष्य के समान अपने लिए धन और भोग के लिए सामग्री एकत्रित नहीं करते हैं। प्रकृति ने उन्हें यह ज्ञान दिया है कि जो भोगा नहीं जाएगा, उसका क्षय ही होगा। इसलिए दूसरे जीवजंतु उतना भोगते हैं जितना उनके लिए अनिवार्य है।

मनुष्य किस प्रकार प्रकृति का शोषण करता है, इसका संकेत इसमें है। विक्रम अच्छी तरह इस सत्य से अवगत है कि पहला शासन प्रकृति का है। राजीव जैसे स्वार्थी लोगों के द्वीपों का समुद्र द्वारा लील जाना इसका प्रमाण है। समुद्र का कथन है- "तुम लोगों ने मेरा क्षेत्र छीनकर उसे अपना द्वीप बना लिया है, मैं उसे ही तो लौटा रहा हूँ। उसे फिर से समुद्र बना रहा हूँ।"[2]

उपन्यासकार की आशा है कि विज्ञान जब इतना विकसित हो जाएगा कि प्रकृति के इन अंगों को भी वह सप्राण और चैतन्य मानेगा, जिन्हें आज वह निर्जीव मानता है, तो आप समुद्र से भी बातें कर सकेंगे, उसकी इच्छा जान सकेंगे, अपनी इच्छा उसे बता सकेंगे। उपन्यास का संदेश यह है कि मनुष्य जिस संपत्ति के लिए परस्पर लड़ता और रक्तपात करता है प्रकृति जब चाहे, उसे नष्ट कर सकती है अथवा अपने वश में कर सकती है।

विनोद सीकर के स्वार्थी, महत्वकांक्षी बेटे राजीव और संजीव और उसकी पत्नी मत्स्यकन्या उसकी संपत्ति हड़पना चाहती हैं। वे अलग-अलग द्वीप अपने लिए खरीदते हैं। वर्तमान समय में विभिन्न देश ऐसे द्वीपों को हड़प लेते हैं। कुछ अमीर लोग भी उसमें रहकर अपना एक साम्राज्य बना लेते हैं। "संसार की महाशक्तियाँ तो द्वीपों को हड़पने के लिए तैयार रहती ही हैं। अब तो वे देश अप्राकृतिक, मानव निर्मित द्वीप भी स्थापित कर रहे हैं। वहाँ वे अपने सैनिक अड्डे बनाना चाहते हैं।"[3] इस प्रकार सहज प्राकृतिक व्यवस्था का ह्रास हो रहा है।

उपन्यास में अमरबेल जैसी वनस्पति का ज़िक्र है जिसके पत्ते नहीं, जड़ें नहीं। उसके कुछ टुकड़े किसी वृक्ष पर डाल दें तो उस वृक्ष का रस चूस-चूसकर उसका सर्वनाश करेगा। यह 'जीवो जीवस्य भोजनम वाली' उक्ति का प्रमाण है। हमारे यहाँ विदेश से लाए गए कुछ पेड़-पौधे और जीवजंतु हमारे अपने पेड़-पौधों और जीवजंतुओं का सर्वनाश कर रहे हैं। यह भयानक विपत्ति है। दूसरे ग्रहों से लाए गए रेत, मिट्टी, जानवर, पेड़-पौधे हमारे अपनों का नाश करेंगे, इसकी ओर संकेत किया गया है। हमें मालूम है कि आयातीत मछली, पेड़-पौधे, जानवर आदि किस प्रकार हमारे इको सिस्टम (पारिस्थितिकी तंत्र) का नाश करते हैं।आयातीत संस्कृति आदिवासी संस्कृति का हत्यारा बन जाती है। यूरोप और अन्य महाद्वीपों से अमेरिका और कनाडा में गए लोगों ने वहाँ के मूल निवासी रेड इंडियंस का सर्वनाश किया। उनकी लाखों की जनसंख्या कम हो गई, मारी गई। अमेरिकी कहते हैं वे महामारियों से मर गए लेकिन चेचक, हैजा जैसी महामारी यूरोप से लाई गई थी। जान-बूझकर इन आदिवासियों की सहायता के नाम पर चेचक जैसे रोगों के कीटाणुओं से लिपटे कंबल आदि बंटवाए। यह एक प्रकार का कीटाणुयुद्ध था। इनसे यूरोप के लोग नहीं मरे, मूल निवासी मर गए। यह वायरस असल में हमारे शरीर का अंग है, वह हमारे शरीर के रक्षक हैं । दुर्ग के भीतर से लड़नेवाले सिपाही के समान हैं। स्पेन तथा यूरोप के दूसरे देशों से आए लोग अपने साथ वे जीवाणु और वायरस लाए, जिनके प्रतिरोधक वायरस स्थानीय लोगों में नहीं थे। वर्तमान

समय में दो सालों से चीन से लाए गए कोरोना वायरस से हम कितने प्रताड़ित हैं ?

आयातीत जीवजंतुओं से, पेड़-पौधों से स्थानीय जातियाँ समाप्त हो जाएँगी। इसके सैकड़ों उदाहरण हमारे सामने हैं। उपन्यासकार शिकागो के पास लेक मिशीगन की मछलियों को, फ्लोरिडा में लाए गए बर्मीज़ अजगरों को सामने रखकर यह प्रमाणित करते हैं। इस प्रकार अनेक हत्यारे, आक्रामक पेड़-पौधे और जीवजंतु हैं। उपन्यासकार बताते हैं - "मनुष्य के शरीर के ये नियम वनस्पति पर भी लागू होते हैं। एक स्थान पर एक विशेष प्रकार की मिट्टी और जलवायु होती है, जिनके कारण वहाँ एक विशेष प्रकार की वनस्पति उत्पन्न होती है ।"[4] जिस प्रकार मूल निवासियों के लिए यूरोप के वायरस हैं, उसी प्रकार है, स्थानीय वनस्पति और जीवजंतुओं के लिए आयातीत वनस्पति। इसी प्रकार मरुभूमि भी फैलती रहेगी। यह रेत और मिट्टी का युद्ध है। मरुभूमि और हरीतिमा का युद्ध है। उपन्यासकार संकेत करते हैं कि धन का लोभ मनुष्य से कुछ भी करवा सकता है। यह भी स्पष्ट करते हैं कि प्रकृति परिवर्तनशील है, किंतु मृत्युधर्मा नहीं है। आज पृथ्वी किसीके लिए भी सुरक्षित नहीं है। महान् पारिस्थितिक कार्यकर्ता सुंदरलाल बहुगुणा की चेतावनी यहाँ एकदम सार्थक सिद्ध होती है कि "मनुष्य-जाति का भविष्य धरती के साथ उसके व्यवहार पर निर्भर करता है। यदि धरती के साथ भोगवाद की सभ्यता की आवश्यकताओं की पूर्ति केलिए कसाई जैसा व्यवहार ज़ारी रहा तो उससे कष्ट, अशांति और कंगाली के सिवा कुछ हाथ लगनेवाला नहीं है ।"[5]

प्रस्तुत उपन्यास का एक ठोस मुद्दा उसका राजनीतिक और सांस्कृतिक विमर्श है। भारत की परंपरागत संस्कृति और उसकी उपादेयता पर अड़िग आस्था रखनेवाले कोहली उस संस्कृति की वर्तमान स्थितियों पर अपना ठोस चिंतन भी व्यक्त करते हैं। वरुणपुत्री विक्रम से बताती है- "पुराणों में और हिंदुओं के धर्मग्रंथों में वर्णित प्राचीन द्वारका नगरी और उसके समुद्र में समा जाने से जुड़े रहस्यों का पता लगाने का काम पिछले कई वर्षों से रुका पड़ा है, क्योंकि इस देश में जिस राजनीतिक दल का शासन था, उसके नेताओं को इस देश की संस्कृति और इतिहास में कोई रुचि नहीं थी, वरन् उससे एक प्रकार का विरोध ही था । वह दल इस देश से राम और कृष्ण का नाम मिटा देना चाहता था। दो सहस्र वर्षों से पूर्व की कोई चीज़ कोई बात उन्हें प्रिय नहीं थी।"[6] उपन्यासकार स्पष्ट करते हैं कि राजनीति बड़ी चीज़ है। द्वारका का अवशेष अरब समुद्र में गोमती नदी के मुहाने पर स्थित है । इसी नाम के, अनेक स्थलों में आधुनिक मंदिर हैं । इसमें बेट द्वारका की स्थापना का भी वर्णन है जिसको भी कृष्ण ने बसाया । यहाँ से मिले मिट्टी के बर्तन 1528 ईसा पूर्व के प्रमाणित होते हैं। "हाल ही में मिली जानकारी यह संकेत करती है कि प्राचीन द्वारका की कथाओं का ऐतिहासिक आधार है। खुदाई के दौरान जो तीस तांबे के सिक्के, शिलाखंड का आधार, वर्तुल और पुराने समय के प्राचीन मिट्टी के बर्तनों के नमूने मिले थे, वे 1500 ईसा पूर्व के हैं ।"[7]

समुद्री पुरातत्व इकाई द्वारा की गई खोज और प्राचीन लेखों में द्वारका के प्रारूप का वर्णन एक समान है। उपन्यास में कहा गया है कि अगले दो साल में अंडर वाटर आर्कियोलॉजी विंग को सुदृढ़ बनाने का निर्णय किया गया है। उपन्यासकार ने संकेत किया है कि पाँच-सात वर्ष पुरानी मूर्तियाँ वैसी की वैसी पड़ी थीं, आज तक तनिक भी विकृत नहीं हुई थीं। वरुणपुत्री,

विक्रम को गहरे समुद्र के अंदर ले जाकर द्वारका का कोना-कोना दिखाती है जैसे श्रीकृष्ण का शयनकक्ष आदि। द्वारका के दुर्लभ नमूनों को विदेशों की पुराप्रयोगशालाओं में भी भेजा गया था और वहाँ से जानकारी मिली कि यह सभ्यता सिंधुघाटी की सभ्यता से भी बहुत पूर्व की है। इस उत्खनन में कई सिक्के और कलाकृतियाँ भी प्राप्त हुई थीं। यह सभ्यता सिंधुघाटीसभ्यता के प्रभाव से मुक्त है। विदेशों में अपनी संस्कृति को सुरक्षित रखने के लिए जितना प्रयास हो रहा है उतना भारत में नहीं।

द्वारकापुरी में सिंहों की अनेक मूर्तियाँ हैं। ये तनिक भी विकृत नहीं हुई हैं, क्योंकि ये समुद्रशिला से बनायी गयी हैं। इस देश में रामसेतु की रक्षा भी नहीं की गई है। शायद इस देश के शासक अपने प्राचीन इतिहास को नष्ट कर देना चाहते थे। वरुणपुत्री बताती है कि जिन जलमग्न नगरों का अब तक पता लगा है, संसार में द्वारिका समेत ऐसे नौ नगर हैं दक्षिणी यूनान में सागर तट पर पावलोपेत्री, जमाइका का पोर्ट रॉयल, जापान के दि पिरमिड ऑफ़ युनागुनी, चीन की लायन सिटी, पीरूमें दि टेंपल अंडर लेक टिटिकाका, अर्जेंटीना का विला एपिक्यूटइन, मिश्र में क्लियोपैट्रा का महल फिर द्वारका। हमारे यहाँ के इतिहास और संस्कृति के यादगारों का संरक्षण हमारा दायित्व है, खासकर सत्ताधारियों का। आधुनिक पीढ़ी की अज्ञता की ओर भी संकेत किया गया है जो अनेक विषयों के बारे में कुछ नहीं जानते, जैसे अंगीठी, चर्खा, सिलबट्टा, कूँड़ी डंडा आदि। स्लेट नहीं जानते, तख्ती नहीं जानते, कलम-दवात नहीं जानते, क्योंकि ये इस पीढ़ी के जीवन से विलुप्त हो गए हैं। आगे कागज़ भी विलुप्त हो जाएगा, केवल लैपटॉप, कंप्यूटर, आईपैड, स्मार्टफोन आदि चीज़ों के विषय में ही जानकारी होगी। विज्ञान और प्रौद्योगिकी मानव के जीवन में बहुत सारे परिवर्तन लाए हैं। परिणाम यह निकला कि भारतीयता या भारतीय संस्कृति जैसी संकल्पनाएँ मात्र संज्ञापद रह गई हैं, अर्थ के देवता इन पदों से कूच गए हैं। प्रसिद्ध समाज विद् और संस्कृतिकर्मी श्यामचरण दुबे ने भारतीयता की सही पहचान केलिए जिन शर्तों की सख्त ज़रूरत पर ज़ोर दिया है, वह इस संदर्भ में अत्यंत सार्थक सिद्ध होता है कि "भारतीयता की बात तो आजकल बहुत सुनी जा रही है, पर उसके तत्वों के विश्लेषण के गंभीर प्रयत्न नहीं हो रहे हैं। जो स्थापनाएँ और अवधारणाएँ प्रस्तुत की गई हैं, उनकी प्रामाणिकता संदिग्ध है। सही समझ की कुछ पूर्व शर्तें हैं -1. इतिहास दृष्टि। 2. परंपराबोध, जिसमें उसका मूल्यांकन शामिल है। 3. समग्र जीवनदृष्टि, जो भूत, वर्तमान और भविष्य को जोडकर देख सके । 4. वैज्ञानिक विवेक, जिससे वैकल्पिक भविष्य और जीवन के बदलते आयामों के प्रश्न जुड़े हैं।"[8] इन चारों तत्वों को सामने रखकर ही कोहली ने उपन्यास में अपने इतिहासबोध और संस्कृति-चिंतन को प्रस्तुत किया है।

अब युद्ध का रूप भी बदल गया है। ळैंचठि इसका प्रमाण है। अब युद्ध ग्रहों के धरातल पर होंगे और महाकाल उनका आयुध होगा। वरुणपुत्री पृथ्वीवालों की हँसी उड़ाकर कहती है- "पृथ्वीवाले अभी आदिम युग के युद्ध कर रहे हैं। उन्हें पता नहीं है कि कब और कैसे उनकी धरती में विश्व खोल दिया जाएगा, कब उनका जल उनके लिए गरल हो जाएगा, कब उसके वायुमंडल में ऑक्सीजन कम कर दी जाएगी ।"[9] वरुणपुत्री ने कहा- "पृथ्वी की वैज्ञानिक गणना तो नहीं ही कर सकता, उसकी कल्पना भी नहीं कर सकता कि और एकएक आकाशगंगा में कितने ग्रह, नक्षत्र और

तारे हैं। उन सब में और जीव वैसा नहीं हैं, जैसा पृथ्वी पर है।"[10]

उपन्यासकार वायरस का विस्तृत वर्णन करके बताते हैं कि सृष्टि में एक व्यक्ति के भीतर ऐसे वायरस हैं जो दूसरा व्यक्ति सहन भी नहीं कर सकता। व्यक्ति कुछ भी नहीं करता और वे वायरस सहस्रों की संख्या में अन्य लोगों को मार देते हैं। आजकल के कोरोना वायरस के बारे में यह सोलह आना सही है। कई लोगों में इस वायरस का लक्षण नहीं होता, लेकिन वे वाहक होकर दूसरे लोगों की मृत्यु का कारण बन जाते हैं।

उपन्यास में सूर्य, सौर मंडल, फ्यूज़न, डिफ्यूज़न की क्रिया-प्रतिक्रिया आदि के बारे में बताया गया है। इसी प्रकार अनेक ग्रहों के निवासी अन्य ग्रहों के लिए शत्रु और घातक हैं। उपन्यास में बार-बार मानवता की अनिवार्य आवश्यकता का संकेत है। वरुणपुत्री का ग्रह शांतिप्रिय था, लेकिन सहसा एक व्यक्ति के मन में महत्वाकांक्षा जाग उठी। वह नेता बन गया, आसपास के लोगों को अपना अनुयायी बना लिया। वह चाहता था कि अन्य जातियों के लोग उसके दास बनकर रहें या वह ग्रह छोड़ दें। जैसे अफ़गानिस्तान में अब तालिबान कर रहे हैं, ठीक वैसे। वह अपने अनुयायियों के अलावा किसी भी जाति या समाज को सहन नहीं कर सकता था। उसकी महत्वाकांक्षा इतनी बढ़ी कि उसने अपना स्वतंत्र देश और स्वतंत्र शासन साबित करने का आंदोलन आरंभ कर दिया। कट्टर वातावरण था। जिस प्रकार एक देश पर वैदेशिक आक्रमण होता है तब वहाँ की कुछ देशविरोधी जातियों से सहायता मिल जाती है, उसी प्रकार वहाँ भी हुआ। वरुणपुत्री का बाबा एक शाश्वत सत्य पर प्रकाश डालते हैं - "प्रकृति में सदा ही सृजन और विध्वंस साथ-साथ होते रहते हैं। यह तो एक चक्र है।"[11] बाबा ने उससे कहा कि एक वर्ष तक अन्य ग्रहों की यात्रा करें। एक वर्ष से ज्यादा समय मत लगाना है। बाबा की राय में तब तक अलगाववादी आपस में लड़कर उसका सर्वनाश होगा। शायद अब तालिबान जैसी राक्षसी शक्तियों का भी ऐसा अंत होगा।

उपन्यास में बताया गया है कि "पहले तो वे लोग अपने निकट के ग्रहों के लिए संकट बने हुए थे, हमें परेशान कर रहे थे। अब ईश्वर की लीला कुछ ऐसी हुई कि वे आपस में लड़ने लगे। स्थिति कुछ ऐसी हुई, कहो कि इतनी बिगड़ी कि एक पक्ष को ग्रह छोड़कर पलायन करना पड़ा। लगभग आधी आबादी वहाँ से मृत्यु के भय से पलायन कर चुकी है। शासक इतना क्रूर हो गया है कि वहाँ रहना कठिन है। छोटे-छोटे बच्चों के हाथों में भी घातक शस्त्र पकड़ा दिए हैं। गलियों में खून बह रहा है। शवों की गिनती नहीं हो।"[12] आजकल अफगानिस्तान में ऐसी घटनाएँ घटित होती हैं ब। तालिबान ऐसा कर रहे हैं। जिस प्रकार वहाँ के लोग भारत, इराक जैसे दूसरे देशों में शरणार्थी होकर जाते हैं वैसे इसी ग्रह के लोग दूसरे ग्रहों पर, आकाशगंगाओं में चले गए। यह तो अस्मिता का संकट है, अस्तित्व का संकट है। सृष्टि में इस प्रकार का आवागमन और स्थानांतरण होता रहता है। ये घुसपैठिए नहीं, बल्कि शरणार्थी हैं, जिनका जीवन दर्द से भरा हुआ, संघर्षरत और संकटग्रस्त होता है।

उपन्यास में आई.एस. के बारे में बताया गया है कि आई.एस. और बगदादी पृथ्वी का सर्वनाश करेंगे। उपन्यास में ऐसा एक प्रसंग है- "मरने वालों के विषय में तो मैं कुछ नहीं कह सकता; किंतु जो विस्थापित हुए हैं, कौन जानता है कि वह उसके उत्थान के लिए ही हुआ हो। संसार के इतिहास में ऐसा कितनी ही बार हुआ है।"[13] सन् 2017 में लिखे गए इस उपन्यास में अफगानिस्तान का ज़िक्र किया गया है। आज का

अफगानिस्तान वर्षों पहले उनकी भावना में आया- "अफगानिस्तान से जो लोग भारत चले आए, वे पीछे रह गए लोगों से बहुत अच्छी अवस्था में है।"[14] आज भी यह सही है। आजकल अफगानिस्तान से जान बचाकर अनेक लोग भारत आते रहते हैं । वे जान बचाने के लिए भारत सरकार से तहे दिल से कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं, क्योंकि वे अपनी मातृभूमि में सुरक्षित नहीं हैं, बल्कि भारत में सुरक्षित हैं। अच्छे साहित्यकार क्रांतदर्शी होते हैं। यह उपन्यास इसका प्रमाण है। मिस्र, इराक और सीरिया का ज़िक्र भी इसमें है। "जहाँ राक्षसों का राज्य है और हत्याओं का बाज़ार गर्म है। वे सामान्य जन को इतना कष्ट दे रहे हैं।"[15] "राक्षस वही हैं, जो इराक और सीरिया में विनाश में लगे हैं..... निर्दोष और अक्षम लोग वहाँ मारे जा रहे हैं, लोग जीवित जलाए जा रहे हैं। स्त्रियों का अपहरण कर उनके साथ कौन सा अत्याचार नहीं हो रहा ? उनके साथ बलात्कार हो रहा है, उन्हें मंड़ियों में दासियों के समान बेचा जा रहा है, उनसे वेश्यावृत्ति कराई जा रही है। उन्हें यौनदासियों के रूप में बंदी बनाकर रखा जा रहा है ....राक्षसों का राज्य और किसे कहते हैं।"[16] संसार से दिन व दिन नष्ट होती जानेवाली मानवता की ओर यहाँ स्पष्ट संकेत है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि 'वरुणपुत्री' निश्चय ही एक सोद्देश्य रचना है। उपन्यास में मिथक या पुरातत्व को सिर्फ साधन के रूप में ही इस्तेमाल किया गया है। उपन्यासकार का मंतव्य अपने समय के भारतीय सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिदृश्य का पुनरीक्षण है, जिसकेलिए उन्होंने मिथक के साथ-साथ फैंटसी का भी इस्तेमाल किया है। इस अजीबोगरीब शैल्पिक संरचना में सिर्फ भारतीय समय और समाज ही नहीं, बल्कि संपूर्ण विश्व का वर्तमान परिदृश्य ही उभर आया है। अतः वरुणपुत्री को निस्संदेह एक प्रतिबद्ध उपन्यास की संज्ञा दी जा सकती है।

संदर्भ

1. विकल्पहीन नहीं है दुनिया, किशन पटनायक, पृ. 143। राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2001.
2. वरुणपुत्री, नरेंद्र कोहली, पृ.116,राजपाल एंड सन्ज़, दिल्ली। प्र. सं. 2017.
3. वही, पृ. 102.
4. वही, पृ. 52.
5. धरती की पुकार, सुंदरलाल बहुगुणा, पृ.85,राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली। सं. 2007.
6. वरुणपुत्री, नरेंद्र कोहली, पृ. 29
7. वही, पृ. 31
8. भारतीय साहित्य, (सं.) मूलचंद गौतम, पृ.68, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली। सं. 2009.
9. वरुणपुत्री, नरेंद्र कोहली, पृ. 55
10. वही, पृ. 55-56
11. वही, पृ. 61
12. वही, पृ. 84-85
13. वही, पृ. 127
14. वही।
15. वही, पृ. 125
16. वही, पृ. 126

♦ असोसिएट प्रोफेसर और ओध्यक्षा
हिन्दी विभाग
श्री व्यासा एन एस एस कॉलेज,
वडक्कांचेरी, त्रिशूर।
मो- 8281847835.

नरेन्द्र कोहली का उपन्यास 'अहल्या' पर एक विचार

• डॉ.बिन्दु.सी.आर

समकालीन हिंदी साहित्य क्षेत्र के सशक्त हस्ताक्षर हैं - श्री.नरेन्द्र कोहली। हिंदी साहित्य के सभी क्षेत्रों में आपने अपनी तूलिका चलाई है। आपका जन्म सन् 1940 को स्यालकर, पंजाब में हुआ। अब यह पाकिस्तान में है। बचपन से ही लेखन-कार्य में आपकी रुचि थी। छह वर्ष की आयु में आपने रचना कार्य शुरू किया। सन् 1960 से रचनाएँ प्रकाशित होने लगीं। दिल्ली विश्वविद्यालय से आपने स्नातकोत्तर एवं पीएच.डी की उपाधियाँ प्राप्त कीं।

उपन्यास के क्षेत्र में महाकाव्यात्मक उपन्यास नामक एक नयी विधा का श्रीगणेश करने का श्रेय आपको ही मिला है। पौराणिक एवं ऐतिहासिक कथानकों को अपनाकर उन्हें समकालीन समस्याओं से जोड़ देने का महत्वपूर्ण प्रयास आपने किया है। उनके उपन्यासों की यही विशेषता है कि आपने विख्यात कथानकों को कुछ नये तरीके से प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है। महाभारत एवं रामायण के प्रमुख एवं गौण पात्रों को चित्रित करके उनमें नयापन लाकर आधुनिक समाज में व्याप्त कुरीतियों एवं अत्याचारों के प्रति शब्द उठा दिये हैं। इसलिए आपकी पौराणिक कथाओं से संबन्धित रचनाएँ सर्वथा मौलिक महसूस होती हैं।

'दीक्षा', 'अवसर', संघर्ष की ओर', 'युद्ध', 'अहल्या' आदि आपके रामकथा विषयक उपन्यास हैं। यहाँ रामकथा एवं उसके पात्रों को आधुनिक धरातल पर, विशेषकर आधुनिक सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक तल पर प्रस्तुत कर दिया है। 'महाभारत' कथा के आधार पर रचित आपका लोकप्रिय उपन्यास है 'महासमर', जिसके आठ खण्ड हैं। यहाँ भी कोहलीजी 'महाभारत' के पात्रों को रूढ़िगत व्याख्या न देकर, नयापन लाये हैं। 'कृष्ण-कथा' पर आधारित आपकी विख्यात रचना है 'वसुदेव'। स्वामी विवेकानन्द के जीवन के आधार पर आपने 'तोड़ो कारा तोड़ो' नामक उपन्यास की रचना की। यहाँ विवेकानन्दजी के जन्म से लेकर निर्वाण तक की कथा वर्णित है। इनके अलावा आपके द्वारा विरचित सामाजिक उपन्यासों में प्रमुख हैं - 'क्षमा करना जीजी', 'साथ सह गया दुःख', 'सागर मंथन' आदि।

रामकथा विषयक, आपका लघु उपन्यास है - 'अहल्या'। इन्द्र के दुष्कर्म एवं धोखे से पीड़ित अहल्या की कहानी रामकथा का एक अंशमात्र है। लेकिन उसे वर्तमानकालीन सामाजिक त्रासदी का रूप देने में आप सफल हुए हैं। 'अहल्या' की कथावस्तु इस प्रकार है–

महामुनि विश्वामित्र राम और लक्ष्मण के साथ जनकपुर चल रहे थे। बीच में राक्षसों द्वारा आश्रमवासियों पर किए गए अत्याचारों पर मुनि चिंतित थे। इस पर समझौता लाने के लिए विश्वामित्र ने सेनानायक बाहुलाख से कहा, पर फायदा नहीं हुआ। एक निर्णय पर पहुँचने में असमर्थ मुनिवर राम और लक्ष्मण के पास लौट आते हैं। फिर वे उन्हेंअहल्या की कहानी सुनाते हैं।

मुनिश्रेष्ठ गौतम ने अपने आश्रम में विद्वानों

की सभा का आयोजन किया। इस सभा में अनेक ऋषियों का संगम हुआ। साथ ही पौराणिक ग्रन्थों पर चर्चा, संगोष्ठी आदि हुईं। इस विद्वत् सभा में उपस्थित होने के लिए गौतम द्वारा इन्द्र का निमंत्रण हुआ। आश्रम के नियम के विरुद्ध मदिरा का भी प्रबन्ध हुआ। गौतम की पत्नी अहल्या सभी कामों में उसकी सहायता देती रही। लेकिन इन्द्र का ध्यान इन सभी कार्यों से हटकर मुनि की पत्नी अहल्या पर पड़ा। आश्रम द्वारा दी गयी औपचारिकता पर धन्यवाद देने के बदले इन्द्र ने अहल्या से आश्रम की अपेक्षा ज़्यादा सुविधाओं से जीने को कहा। पर अहल्या ने एक धर्मपत्नी की भूमिका निभाकर उसे इनकार कर दिया। पर चतुर इन्द्र ने अवसर पाकर अहल्या पर बलात्कार किया और आश्रम छोड़कर चला गया। सारी बातें जानकर गौतम क्रुद्ध नहीं हुए। अपनी पत्नी की उपेक्षा नहीं की। पतिता कहने को भी गौतम तैयार नहीं थे।

इन्द्र से हुई धोखा के कारण गौतम ने पुत्र के साथ पत्नी को तपस्वी समाज के सम्मुख पेश किया। कुछ इन्द्र के वश में बोले और कुछ अहल्या के। सभी लोगों के चले जाने के बाद आहत, अपमानित गौतम अकेला हो गया। उपकुलपति अमितलाभ ने इस अवसर का फायदा उठाना चाहा। पतित नारी अहल्या के साथ रहने के कारण, कुलपति के स्थान पर रहने को गौतम योग्य नहीं। अब अमितलाभ ने ऐसा कहकर मिथिला में होनेवाले नए आश्रम के कुलपति बनाने का उपाय सोचा। पर गौतम सहमत नहीं था।

सब समझकर अहल्या जीवत्याग करने को तैयार हो गयी। पर मुनि ने सांत्वना कर दी। अहल्या असंमजस में पड़ गयी। बीच में आनेवाली सखी सदानीश एक खबर लायी कि नए आश्रम की पूर्ती हो चुकी है और गौतम को वहाँ के कुलपति बनाने का निश्चय भी हुआ है। खबर जानकर अहल्या पति को भेज देती है। वह अपने आश्रम में स्वयं सबकुछ परित्यक्त करके शिला के समान जीने का निश्चय कर लेती है। वहाँ कुलपति के रूप में गौतम के अभिषेक की तैयारियाँ हो रही थीं। गौतम ने भी विधिवत् कार्यों का शुभारंभ किया, पर बीच में गौतम ने विधि को बदलकर जल हाथ में लेकर इन्द्र को शाप दिया। बाद में गौतम अपनी कुटिया की ओर चले। विश्वामित्र राम और लक्ष्मण के साथ अहल्या के आश्रम में पहुँचे। अहल्या के चरणों के स्पर्श करके राम और लक्ष्मण ने उसे पूजिता बनायी। राम के आगमन से अहल्या संतुष्ट हुई। शिलावत् जीवन बितानेवाली अहल्या पवित्र हो गयी। राम के कारण शतानंद (अहल्या का पुत्र) का अपमान दूर हो गया। आगे उसकी माँ को कोई पीतता नहीं कहेगा। अपने आश्रम में शिलावत् जीवन से त्रस्त अहल्या आज शापमुक्त हो गयी। कोहलीजी के शब्द यहाँ सार्थक हैं- "एक ऋषि ने इंद्र को शाप देकर भी अपनी पत्नी को निष्कलंक वापस प्राप्त किया है। राघव! यदि तुम्हारा जन्म कुछ पहले हुआ तो ऋषियों को इतना तपना नहीं पड़ता।"1

'अहल्या' नामक कोहलीजी के उपन्यास में आपने गौतम की पत्नी अहल्या को एक साधारण पीड़ित नारी के रूप में चित्रित किया है जो समकालीन समाज की पीड़ित नारियों का प्रतिनिधित्व करती है। रामकथा के प्रस्तुत अंश को परंपरागत कथा से विचलित समाज की साधारण दम्पति की कहानी के रूप में चित्रित किया है। उपन्यास के प्रारंभ में तपस्वियों पर राक्षसों द्वारा किए जानेवाले अत्याचारों

पर चिंतित विश्वामित्र को देख सकते हैं। आपने इसे इस प्रकार स्पष्ट किया है कि जो दुर्बल है उस पर अधिकार जमाना आसान है। शासक वर्ग भी इस तरह के लोगों से डरते हैं। समझौता के लिए भी तैयार नहीं होते।

'अहल्या' पर आते ही कोहली जी इस बात पर चिंतित है कि अहल्या जैसी साधारण नारी का उद्धार कौन कर सकता। कोई गलत किए बिना ऐसी नारियाँ दुर्बल होने के कारण पीड़ित होती हैं और आगे समाज उसे पीतता कहते हैं। उपन्यासकार की राय में 'अहल्या' के सभी पात्र सम्मानित हैं। पीत गौतम मुनिश्रेष्ठ है। पुत्र शतानंद राजगुरु है। अपराधी देवेन्द्र देवों के राजा हैं। देवेन्द्र से प्रत्यक्ष रूप से लड़ने में संत लोग असमर्थ निकले हैं। इसलिए समाज ने दुर्बल अहल्या को बहिष्कृत किया। मुनि ने दोनों को शाप दिया। लेकिन कोहली कुछ बदलकर सोचते हैं। उनकी राय में इतने बड़े अपराध करनेवाले देवेन्द्र को शाप से भस्म कर देना ही उचित था। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। न्याय निकालने में पुत्र और सम्राट भी पीछे हटे। ऐसे एक समाज में शिलावत् होकर जीनेवाली अहल्या का चित्रण आपने किया है। एक विशेषता ऐसी है कि अहल्या और पति आपस में नफ़रत नहीं करते हैं। पतिता बन जाने पर भी पति के प्रति अत्यधिक प्रेम और आदर अहल्या के मन में निहित है। गौतम भी पत्नी की पुनप्राप्ति की प्रतीक्षा में हैं।

न्याय के पक्ष से विचलित होकर चलनेवाले एक समाज में राम जैसे आदर्श एवं साहसी पुरुष की आवश्यकता पर आप बल देते हैं। अवतार पुरुष राम अपने भाई के साथ आश्रम में पहुँचकर अहल्या को सांत्वना देते हैं। राम की ऐसी प्रवृत्ति पर संतुष्ट विश्वामित्र का जो कथन है इससे पतिता नारियों का आत्मबल बढ़ता जाता है और उसे समाज में जीने की ताकत प्रदान करता है। विश्वामित्र का कथन इस प्रकार है.....'जाओ देवी! तुम्हें कौसल्या के पुत्र राम का संरक्षण प्राप्त है। अब कोई भी जड़ चिंतक, ऋषि, मुनि, पुरोहित, ब्राह्मण, समाज-नियंता तुम्हें सामाजिक और नैतिक दृष्टि से अपराधी नहीं ठहराएगा।"2 यहाँ राम जैसे आदर्श पुरुष सत्य और न्याय की विजय के लिए कोशिश करेंगे। उन्हें समाज की रूढ़ियों के प्रति या कुरीतियों के प्रति तनिक भी भय नहीं। समाज हमेशा अपने अस्तित्व की बात सोचते हैं। लेकिन आदर्श पुरुष रूढ़ीयों का खण्डन करके सामाजिक उद्धार के बारे में सोचते हैं। पौराणिक काल से लेकर वर्तमानकाल तक यह एक ऐसी विडंबना बनकर आती रहती है कि ऐसी अनेक नारियाँ पुरुषों के अत्याचार के कारण, समाज से बहिष्कृत होकर जीती रहती हैं। राम ने यहाँ अहल्या का उद्धार करके समाज को ऐसा सन्देश दिया कि नारी को पुरुष के अत्याचार के कारण पतिता बनकर या शिलावत् होकर एकाकी जीवन जीने की आवश्यकता नहीं। उसका उद्धार ज़रूर होना चाहिए। समाज में निड़र होकर जीने का अधिकार देना चाहिए। ऐसा सन्देश, प्रस्तुत उपन्यास के द्वारा कोहलीजी ने हमारे सम्मुख पेश किया है।

संदर्भ

1.अहल्या, नरेन्द्र कोहली, पृ.सं.134
2.अहल्या, नरेन्द्र कोहली, पृ.सं.122

आधार-

'अहल्या' नरेन्द्र कोहली, हिन्द पॉकेट बुक्स, पेंगुइन रैंडम हाउस इंडिया प्रा.लि., गुड़गाँव, हरियाणा, भारत।

◆ अध्यापिका

जीवन के उदात्त मूल्यों का उदात्त चित्रण -'अभिज्ञान'

♦ डॉ.अंबिली.टी

समकालीन हिन्दी के सशक्त हस्ताक्षर हैं डॉ. नरेंद्र कोहली। इनके साहित्य की विशेषता है कि इन्होंने प्राचीन महाकाव्यों को आधुनिक पाठकों के लिए गद्यरूप में लिखने का नवीन प्रयास किया है। 'अभिज्ञान' उनका पौराणिक उपन्यास है। भगवद्गीता में वर्णित श्रीकृष्ण के कर्म सिद्धांत को आधारभूमि बनाकर लिखा गया उपन्यास है यह। यह उपन्यास कर्मसिद्धांत की पुष्टि नहीं, अपितु साधारण मनुष्य को समझने के लिए इसका परिचय प्रस्तुत करता है। उपन्यास की कथा कृष्म - सुदामा की लोकप्रिय कथा-प्रसंगों पर आधारित है। यह जीवन के उदात्त मूल्यों का चित्रण करनेवाला उपन्यास है। कृष्ण-सुदामा चरित को अत्यंत सरलता से इसमें प्रस्तुत किया गया है।

इसके बीज शब्द हैं अभिज्ञान, कर्म सिद्धांत, दर्शन, गुरुकुल, आर्थिक कठिनाई, प्रशासन, पैदल यात्रा, ज्ञानचर्चा आदि।

समकालीन हिन्दी साहित्य को संवर्द्धित करनेवाले सशक्त हस्ताक्षर डॉ. नरेंद्र कोहली 'कालजयी साहित्यकार' हैं। उन्होंने साहित्य की सभी मुख्य एवं गौण विधाओं में अपनी लेखनी चलाई है। इनके साहित्य की विशेषताओं पर विचार करें तो कहा जा सकता है कि इन्होंने प्राचीन महाकाव्यों को आधुनिक पाठकों के लिए गद्य रूप में प्रस्तुत करने का एक नवीन प्रयोग किया है। इन्होंने पौराणिक एवं ऐतिहासिक आख्यानों के द्वारा हमारे समाज की समस्याओं को प्रस्तुत किया और उनके लिए समाधान भी ढूँढ़ निकाला। इन्होंने यथार्थवादी उपन्यासों के साथ हिन्दी साहित्य में पदार्पण किया था। फिर इन्होंने महसूस किया कि हमारा भारतीय वाङ्मय तो अत्यंत समृद्ध है और इन्हें सरल भाषा में पाठकों तक पहुँचाने का प्रयास पहले कभी नहीं हुआ है। अतएव कोहलीजी ने पौराणिक चरित्रों की गुत्थियों को सुलझाकर आधुनिक समाज की समस्याओं एवं उनके समाधान को समाज के सामने रखने का प्रयास किया। आज के समाज की मूल्यच्युति को देखकर कोहलीजी स्वयं त्रस्त हुए। मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा इन्होंने अपना ध्येय माना। ये पुराकथाओं को समकालीन संदर्भों से जोड़ते थे। इनके द्वारा, इन्होंने युगीन समस्याओं को मुखरित करने की कोशिश की। इन्होंने रामकथा, कृष्णकथा, स्वामि विवेकानन्द की जीवनी आदि को विषय बनाया। इन्होंने ऐतिहासिक, सामाजिक एवं पौराणिक उपन्यास लिखे। आपने साहित्य की विभिन्न विधाओं पर लिखा। 'अभ्युदय', 'महासमर', 'अभिज्ञान', 'आतंक', 'आत्मदान', 'पुनरारंभ', 'दीक्षा', 'अवसर', 'क्षमा करना जीजी', 'न भूतो न भविष्यंति', 'पृष्ठभूमि', 'साक्षात्कार' आदि इनके उपन्यास हैं।

नरेंद्र कोहली का पौराणिक उपन्यास है 'अभिज्ञान', जिसका प्रकाशन सन् 1981 ई. में हुआ था। प्रस्तुत उपन्यास 'भगववद्गीता' में वर्णित श्रीकृष्ण के 'कर्म सिद्धांत' को आधारभूमि बनाकर लिखा गया है। इस उपन्यास का उद्देश्य कर्म सिद्धांत की पुष्टि नहीं, साधारण मनुष्य को समझने के लिए इसका परिचय इसमें दिया गया है। वास्तव में इस उपन्यास को दार्शनिक उपन्यासों की कोटि में रखा जा सकता है। कृष्ण-सुदामा के

लोकप्रिय कथा-प्रसंग पर आधारित उपन्यास है 'अभिज्ञान'। इसमें एक ओर यह दर्शाया गया है कि असमान आर्थिक स्थिति के कारण द्रुपद - द्रोण की मित्रता, शत्रुता में परिणत होती है। दूसरी ओर तो कृष्ण-सुदामा की मित्रता आर्थिक कसौटी पर निखर उठती है। प्रस्तुत उपन्यास में जीवन के उदात्त मूल्यों का उदात्त चित्रण है और कृष्णकथा द्वारा मनुष्य की महानता तथा जीवन की विविधता का प्रतिपादन किया गया है। उपन्यास का काल तो वयस्क कृष्ण का काल है। यह काल तो द्वारका में बसने के बाद का और हस्तिनापुर में द्युतक्रीड़ा के समय का काल है। जीवन में कर्मयोग का महत्व क्या है, इस विषय पर गंभीर चर्चा इस उपन्यास में हुई है। इसमें एक व्यक्ति के रूप में मनुष्य जिस संघर्ष से जूझ रहा है, उसे नयी दृष्टि से देखने का प्रयास कोहली जी ने किया है।

कोहलीजी ने समाज की भलाई के लिए अपने दार्शनिक विचार को कृष्ण के कर्मयोग के साथ जोड़कर विश्लेषित करने की कोशिश की है। कृष्ण और सुदामा की आपसी चर्चा द्वारा आधुनिक दर्शन की तीन धाराओं- भक्तियोग, ज्ञानयोग और कर्मयोग-विशेषकर, कर्मयोग को परिभाषित करने की कोशिश है इसमें। सुदामा के, बिना माँगे सब पाने और कृष्ण के बिना दिये सब देने की कहानी है 'अभिज्ञान'। सुदामा का परिवार आर्थिक दृष्टि से चाहे कितना गया बीता हो, फिरभी वे अपनी सामाजिक स्थिति ऊँची मानते हैं, किन्तु उस स्थिति को बनाये रखने के लिए उन्हें कठिन परिश्रम करना पड़ता है। यहाँ लेखक यह कहना चाहते हैं कि बिना अर्थिक आधार के, सामाजिक स्थिति बन नहीं सकती।

कोहलीजी ने उपन्यास के साधारण पाठक के अनुभव क्षेत्र को दृष्टि में रखकर ही, रचनाओं को रूप दिया है, यथाः- "इस प्राचीन और प्रख्यात कथानक के भीतर से प्रकट होते हुए यह निष्कर्ष आपके अपने समय की सच्चाई है। प्रकृति की जटिलता के भीतर छिपे ये तथ्य उद्घाटित होकर हमें अपने ही जीवन को देखने की एक नई दृष्टि देते हैं।"[1]

प्रस्तुत उपन्यास 14 अध्यायों में बाँटा हुआ है। अवन्ती में स्थित गुरु सांदीपनि के आश्रम में श्रीकृष्ण, बलराम, उद्धव आदि शस्त्र सीख रहे थे और वेद भी पढ़ रहे थे। सुदामा तो पहले ही उसी आश्रम में शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। सुदामा वेदों के प्राचीन पाठों के अर्थों को समझते थे और याद रखते थे। सुदामा, उद्धव की तरह ज्ञानमार्गी एवं दर्शन के विद्वान थे। श्रीकृष्ण ने गुरु सांदीपनि के मृत पुत्र के जीवन को मृत्यु देवता के हाथों से मुक्त कर दिया था। इसी कारण उन्हें उत्यंत लोकप्रियता मिली थी। सुदामा तो अब अपनी ही कुटी में पत्रों पर लिखे अपने ग्रन्थों के साथ रहता है। उनकी शादी तो देर से हुई थी। उनके दो पुत्र हैं - बारह साल का विवेक और सात साल का ज्ञान। वे अपने स्कूल में आनेवाले छात्रों को पढ़ना, लिखना और सामान्य ज्ञान संबन्धी बातें सिखाते थे। ट्यूशन शुल्क के रूप में उन्हें जो कुछ मिलता था, वही उनका वेतन था। कई दार्शनिक और सन्त लोग उनकी कुटी में ठहरते थे। ऐसे ही एक बाबा उनकी कुटी में आते हैं। सुदामा और बाबा की चर्चा में कौरव, पांड़व, जरासंध, रुक्मिणी के साथ कृष्ण का विवाह, विदर्भ की राज्ञी, चेदी साम्राज्य, पांड़वों की मृत्यु संबन्धी घटनायें, भीम का नया नाम वृकोदर, द्रौपदी के स्वयंवर में भाग लेने आये पांड़व, इंद्रप्रस्थ साम्राज्य पर युधिष्ठर का राजतिलक करना, इंद्रप्रस्थ

का विकास और निर्माण कार्य, सत्यभामा के साथ श्रीकृष्ण की शादी, पांड़वों का राजसूय याग, कृष्ण द्वारा पराजित शाल्व आदि विषय आते हैं।

बाबा, सुदामा को द्वारका की विशेषता, वहाँ का गुरुकुल, यादव लोग आदि विषय से संबन्धित बातें बताते हैं। बाबा ने कहा कि कृष्ण यादव राज्य परिषद के नेताओं में एक है, वे एक मौलिक विचारक हैं। वे सोचते हैं, विचार करते हैं, चर्चा करते हैं और उन विचारों को अप्लाई करते हैं। उनके लिए वे सब तत्व अत्यंत महत्वपूर्ण हैं, जो समाज के लिए उपयोगी हों। ऐसा कृष्ण, सुदामा के बचपन का मित्र है। इसी कारण द्वारका में उनसे मिलने का सुझाव बाबा देते हैं। पत्नी सुशीला भी उसे प्रेरणा देती है। सुदामा जाने का निश्चय करता है। उसके आत्मसम्मान और दरिद्रता के मध्य की कशमकश ने उसे कृष्ण से मिलने के लिए मजबूर किया था। कृष्ण को देने के लिए पत्नी चिउड़ा की पुड़िया देती है। सुदामा नंगे पैर तीसरे दिन द्वारका पहुँचता है। श्रीकृष्ण अत्यंत आदर-सत्कार के साथ इनका स्वागत करता है। वहाँ दोनों में विभिन्न विषयों पर चर्चाएँ होती हैं। फिर सुदामा अपना गाँव वापस आता है, तो पता चलता है कि श्रीकृष्ण ने आज्ञा दी है कि गाँव का नाम बदलकर 'सुदामापुरी' रखना है और वहाँ एक नये गुरुकुल की स्थापना भी होनी है। तब सुदामा को महसूस होता है कि उसके संघर्ष ने समाज के विचारों को बदल डाला है। उन्होंने निश्चय किया कि गुरुकुल के पाठ्यक्रम के अंतर्गत युवकों को शिक्षा एवं नौकरी देने लायक विषय ज़रूर रखना है। समाज में गुणात्मक परिवर्तन लाने योग्य कार्य करने की प्रेरणा भी कृष्ण सुदामा को देते हैं।

सुदामा भी उद्धव की तरह ज्ञानमार्गी और दर्शन का पंड़ित था। कृष्ण और सुदामा के बीच ज्ञान चर्चा होती है। इसमें कृष्ण के कर्मफल पर भी चर्चा होती है। सत्कर्म और दुष्कर्म के साथ कर्म और अकर्म के भेद और परिणामों पर भी चर्चा होती है।

प्रस्तुत उपन्यास में उपन्यासकार समाज की विडंबनाओं एवं जनता की मनस्थिति की ओर संकेत करते हैं। मनुष्य तो आजकल भौतिकता की तुलना में आत्मिकता पर अधिक ध्यान नहीं देते हैं। आत्मिकता संबन्धी बातों को सुनने के लिए उनके पास समय नहीं है, यथाः "पहलवानों का कोई दंगल हो, कोई अश्व कौतुक हो, कोई मेला हो, साभिनय नृत्य करनेवाली कोई नर्तकी हो, तो कितनी भीड़ एकत्रित हो जाती है। .... और यदि ज्ञानचर्चा के लिए कोई गोष्ठी आयोजित हो, किसी आचार्य का व्याख्यान हो या विद्वानों का कोई सम्मेलन हो.... उठ-उठकर भागने लगते हैं।"[2] सभाओं में वस्तुतः राज-पुरुषों का सम्मान होता है, पर आचार्यों का सम्मान नहीं। इसपर हँसी उड़ाकर उपन्यासकार कहते हैं कि 'सत्ता का दर्प छिपाए नहीं छिप रहा था।'[3]

उपन्यासकार भक्ति के नये रूप 'लौकिक भक्ति' की ओर संकेत करके कहते हैं कि "जिस किसी व्यक्ति की भक्ति की जाए, वह अपनी क्षमता भर दान देता है। पद को प्राप्त करने के लिए आवश्यक योग्यता न हो तो भक्ति से वह काम हो जाता है। धन की लालसा हो तो धनोपार्जन का उद्यम कर भक्ति करें तो धन प्राप्त हो जाता है।"[4]

हमारी समझ में तो बड़ा आदमी वह है जिसके पास धन हो। पर वास्तविक बड़ा आदमी की परिभाषा सुदामा देते हैं:- "बड़ा आदमी वह होता है, जो अपनी

पशु पक्षियों को त्याग सके और अपनी साधना, त्याग तथा तपस्या से मानव जाति के कल्याण के लिए कोई मार्ग विकास ..... आदमी बड़ा न धन से होता है, न ज्ञान से, आदमी बड़ा होता है सदाचार से।"[5]

स्वार्थता मानव समाज का सहज स्वभाव है। स्वार्थता के कारण मनुष्य पशु बन जाता है। हमारे समाज में होनेवाले मारकाट, डकैती, अत्याचार आदि के पीछे उसकी स्वार्थता है। इस उपन्यास में इसका जिक्र हुआ है, यथाः- "मानव समाज सचमुच बड़ा स्वार्थी है। अपने लिए तो उसे सबकुछ चाहिए और अच्छी दशा में चाहिए।..... पता नहीं मनुष्य कब यह समझ पाएगा कि प्रकृति ने जो कुछ उसे दिया है, वह मात्र उसी के लिए नहीं है.... उसके समकालीनों और उसके बाद आनेवाली असंख्य पीढ़ियों की सामूहिक संपत्ति है। उसके तनिक भी अनावश्यक विनाश अथवा उसको दूषित करने का कोई अधिकार नहीं है उसे।"[6] यहाँ प्रकृति-संरक्षण की अनिवार्यता पर भी बल दिया गया है।

मैत्री तो अकथनीय भाव है। "कृष्ण-सुदामा की मैत्री तो सबके लिए आदर्श है। यथा सुदामा सोचते हैंः- मैत्री वस्त्रों से नहीं होती। यदि परिधान देखकर ही कृष्ण मैत्री को स्वीकार करता है तो सुदामा कभी भी कृष्ण के मित्र नहीं हो सकते। मैत्री तो भाना है, भौतिक स्थिति या बाहरी प्रदर्शन, बीच में कहाँ से आ गया?"[7]

प्रस्तुत उपन्यास में उपन्यासकार अपने भक्ति संबन्धी विचार प्रकट करते हैं। इनकी राय में तो भक्ति सर्वथा व्यर्थ नहीं। यथा, कृष्ण का कहना है - "भक्ति भावना है और ज्ञान चिंतन। यदि व्यक्ति चाहे तो उनका समाहार कर्म में कर सकता है।... अन्न उपजाने के लिए धरती पर श्रम करना होगा।.... पर भावना के रूप में भी भक्ति निष्फल नहीं है।.... कृषिशास्त्री पूजा करता है तो दिन रात मिट्टी के कणों का परीक्षण और प्रयोग करता है, सिंचाई का चिंतन करता है।.... धरती से अधिक अन्न पाने में सफल होता है।.... पसीने के स्थान पर धूप, दीप और चंदन से धरती की पूजा करते हैं तो उन्हें कोई लाभ नहीं होता।"[8] यहाँ कृष्णा ने भक्ति को कर्म में बदल दिया।

भावात्मक भक्ति के बारे में कृष्ण कहते हैं - "भावात्मक भक्ति, व्यक्ति का स्वयं को तपाकर स्वच्छ करने का प्रयत्न है। वह एक बड़ी वस्तु की प्राप्ति का प्रयत्न है, जिसके कारण छोटी वस्तुओं की कामना छूट जाती है। सात्विक भक्ति में व्यक्ति सांसारिक इच्छाओं से मुक्त होता है .... इस दृष्टि से भक्ति एक अनुभूति मात्र है।"[9]

सकाम भक्ति के संबन्ध में कृष्ण के विचार इस प्रकार हैंः- "सुख, समृद्धि के लिए सकाम भ्ति एक पाखंड़ है। यह एक उद्यम है धनोपार्जन का। इससे धन संपत्ति ही प्राप्त होती है। सात्विकता नहीं।..... यह अधिक से अधिक मोह में फँसाती है।"[10]

जीवन संबन्धी श्रीकृष्ण की उक्ति में उपन्यासकार का मानवतावादी स्वर झलकता है। यथाः- "सबसे महत्वपूर्ण है यह जीवन। जितना भी चिंतन होता है, वह इसी जीवन को अधिक विवेकपूर्ण, समृद्ध, सुविधापूर्ण और सम्मानजनक बनाने के लिए होता है। किंतु जीवन का तात्पर्य एक व्यक्ति का जीवन नहीं, सारी मानवता का जीवन है और यदि हम उसके परे भी सोच सकें तो सारी सृष्टि का जीवन है।"[11]

कर्म को परिभाषित करते हुए कृष्ण कहते हैं -

"मेरे लिए कर्म एक क्रिया है - पूरी या अधूरी, अंगी या अंग, पूर्ण या खंड़। इस दृष्टि से फल उस क्रिया की प्रतिक्रिया मात्र है। यह प्रतिक्रिया प्रकृति के सत्यों के अनुसार होती है।प्रकृति की दृष्टि में कर्म अच्छे और बुरे की सूचियों में बंटे हुए नहीं।"[12]

निष्काम कर्म संबन्धी अपने विचार को उपन्यासकार कृष्ण के मुँह से इस प्रकार प्रकट करते हैं:- "निष्काम कर्म का अर्थ और कुछ भी नहीं है, सिवाय इसके कि व्यक्ति जब जो कार्य कर रहा हो, उसे किसी अन्य वस्तु का साधन न मानकर उस कार्य को भी अपना साध्य माने, उसमें मन लगाए। ऐसे में प्रकृति उसे उसके कर्म का, उसकी अपेक्षा से अधिक फल देगी।"[13] उपन्यासकार दुर्योधन और कंस को जनता के शोषक स्थापित करते हुए कहते हैं, यथाः- "राजा के पास जो धन है, वह प्रजा की धरोहर है। उसे व्यय करने का अधिकार राजा को तब ही है, जब उस व्यय से प्रजा का लाभ होता है।.... यह प्रजा के धन का अपहरण है।"[14]

नारी संवेदना के प्रतिनिधि कथाकार कोहली ने इसमें भी नारी विषयक अपनी संवेदना की अभिव्यक्ति की है। वे नारी को अबला नहीं, सबला मानते हैं। प्रस्तुत उपन्यास की नायिका सुशीला नारी संवेदना का सच्चा मसलन् है। हर एक बात में पति का साथ देना और उसकी सहायता करना पत्नी का धर्म है। इस आदर्श को उपन्यास में रखा गया है। सुशीला अपने पति सुदामा को कर्मोन्मुखी बनाने केलिए अपना आलस्य छोड़कर स्वयं कर्मरत होती है। उपन्यास के बाबा सुशीला से कहते हैं:- "नारी को यह नहीं मान लेना चाहिए कि वह आजीविका उपार्जन के लिए सर्वथा पुरुष का आश्रित है। कभी - कभी पति को अधिक समर्थ बनाने के लिए भी पत्नी को सक्षम बनना पड़ता है।"[15] उपन्यासकार समाज में पुरुष और स्त्री की समानता को माननेवाले हैं। पत्नी, पति की गुलाम नहीं। कंधे से कंधे मिलाकर उसको पुरुष के साथ चलना है।

प्रस्तुत उपन्यास में श्रीकृष्ण और सुदामा जैसे पात्रों द्वारा कोहलीजी अपने विचार प्रकट करते हैं। उपन्यास में धन की अपेक्षा ज्ञान को प्रमुखता दी गयी है। प्रकृति को समझना, मनुष्य की स्थिति, सृष्टि के गुह्यतम भेदों से साक्षात्कार, जन्म के पहले की जीव की स्थिति आदि विषयों पर भी गंभीर चर्चा की गयी है। लेखक, मृत्यु के पश्चात् मनुष्य कहाँ जाता है? स्रष्टा है तो उसका स्वरूप क्या है? इन सबका उत्तर ढूँढ़ना चाहते हैं। उपन्यासकार यह बताना चाहते हैं कि भौतिक सुख वास्तविक सुख नहीं है। वह जीवन का लक्ष्य नहीं है। सामाजिक महत्व और सम्मान कोई अर्थ नहीं रखता। ज्ञान ही प्रमुख है। अध्यात्म और वैराग्य में जो अन्तर है, इस पर भी उपन्यासकार ने प्रकाश डाला है। वे वैराग्य को आत्महत्या से बढ़कर मानते हैं। उनकी राय में वही सच्चा सन्यासी है, जो धनार्जन की स्पर्धा से अलग होकर आवश्यकता भर अर्जन कर सामाजिक कल्याण के लिए कार्य करता है। उनके विचार में प्रकृति की व्यवस्था तो पूर्ण और नियमबद्ध है। मनुष्य अपनी सीमित बुद्धि के कारण उसे न समझ पाता है। मनुष्य और प्रकृति के अटूट संबन्ध पर भी इस उपन्यास में प्रकाश डाला गया है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि कोहलीजी ने 'अभिज्ञान' उपन्यास में पौराणिक आख्यानों से चमत्कारों

को निकालकर हमारे सामने प्रस्तुत करके उसे विश्वसनीय भी बनाया है। इसमें कहीं भी नायकों का नायकत्व उभरकर नहीं आया है। कोहलीजी ने उस समय के सामाजिक परिवेश में ज्ञान के कम होते महत्व को भी उकेरा है। यह उपन्यास आज ही नहीं, कल भी नहीं, हर समय के लिए अत्यंत प्रासंगिक है।

संदर्भ :

1. अभिज्ञान - संस्करण 2002, पुस्तक परिचय
2. डॉ.नरेंद्र कोहली - अभिज्ञान, पृ.सं. 69-70, प्रकाशक - राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली।
3. वही, पृ.सं.77
4. वही, पृ.सं. 82
5. वही, पृ.सं. 91
6. वही, पृ.सं. 110
7. वही, पृ.सं. 118
8. वही, पृ.सं. 142
9. वही, पृ.सं. 143
10. वही, पृ.सं. 98
11. वही, पृ.सं. 154
12. वही, पृ.सं. 164
13. वही, पृ.सं. 194
14. वही, पृ.सं. 199
15. वही, पृ.सं. 36

◆ सहायक आचार्या
हिन्दी विभाग, सरकारी महिला महा विद्यालय
तिरुवनन्तपुरम।
मो: 9495369970

सही उत्तर चुनें

1. नरेन्द्र कोहली का जन्म स्थान कहाँ है?
(अ) इलाहाबाद (आ) मुरादाबाद
(इ) रामपुर (ई) सियालकोट

2. नरेन्द्र कोहली का पहला कहानी संग्रह कौन-सा है?
(अ) परिणय (आ) परिणति
(इ) शंबूक की हत्या (ई) पुनरारंभ

3. 'भगवद्गीता' के कर्म सिद्धांत पर केन्द्रित कोहलीजी का उपन्यास कौन-सा है?
(अ) अभ्युदय (आ) अभिज्ञान
(इ) दीक्षा (ई) शरणम्

4. 'रामकथा' पर आधारित कोहलीजी की उपन्यास श्रृंखला का पहला खंड कौन-सा है?
(अ) दीक्षा (आ) युद्ध
(इ) साक्षात्कार (ई) अवसर

5. 'महासमर' उपन्यास के कितने खंड हैं?
(अ) 6 (आ) 7 (इ) 8 (ई) 9

6. कोहलीजी के उपन्यासों के मलयालम अनुवादक कौन हैं?
(अ) के. जी. बालकृष्ण पिल्लै
(आ) के. सी. अजयकुमार
(इ) डॉ.षण्मुखन (ई) डॉ. पी. बालकृष्णन

7. 'महासमर' का प्रकाशक कौन है ?
(अ) वाणी प्रकाशन (आ) लोकभारती प्रकाशन
(इ) राधाकृष्ण प्रकाशन (ई) प्रभात प्रकाशन

सही उत्तर
1) ई 2) आ 3)आ 4) अ 5) इ 6)आ 7) अ

'स्मरामि': एक परिदृश्य

♦ डॉ.लता.डी

समकालीन हिन्दी साहित्य के प्रमुख कथाकार हैं श्री नरेन्द्र कोहली। अपने उपन्यासों और कहानी संग्रहों से उन्होंने हिन्दी कथा साहित्य की श्रीवृद्धि में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। हिन्दी नाटक साहित्य, व्यंग्य, निबन्ध, बाल साहित्य आदि क्षेत्रों में भी आपने अपनी सृजनात्मक प्रतिभा की पहचान दी। नरेन्द्र कोहली जी के द्वारा रचित संस्मरणों का पहला संकलन है 'स्मरामि'। इसमें कुछ संस्मरण अपने समय के वरिष्ठ हिन्दी साहित्यकारों पर हैं तो कुछ अपने समवयस्कों, अध्यापकों और कुछ अपने से छोटे लेखकों पर भी लिखे गये हैं। अपनी जीवनसंगिनी मधुरिमा केलिए समर्पित यह पुस्तक कुलमिलाकर उन्नीस संस्मरणात्मक लेखों का संग्रह है।

'स्मरामि' के प्रथम दो लेखों में श्री नरेन्द्र कोहलजी अपने विद्यार्थी जीवन और उसमें अपने गुरु हिन्दी के मशहूर आलोचक डॉ.नगेन्द्रजी के व्यक्तित्व की अमिट छाप की प्रभावोत्मादक स्मृतियों को प्रस्तुत करते हैं। 'मुखौटा और मन', 'क्लांतिहीन साधकः डॉ.नगेन्द्र' नामक दोनों संस्मरणों में डॉ.नगेन्द्रजी की गरिमा में बँधे, अनुशासन व कर्कशता की साक्षात् मूर्ति, तेज व प्रखर व्यक्तित्व का चित्र खींच डालते हैं। अपनी यादों में डूबकर डॉ. नगेन्द्रजी का जो रूप कोहलीजी उभार लेते हैं वह इसप्रकार है - "गहन गंभीर, साक्षात् शास्त्र, मर्यादा रूप जो छात्रों में भय जगाता था और जिनसे शंकाओं के समाधान करने या बहस करने से सब डरते थे। उनके आतंकी स्वभाव के बावजूद वे एक समर्थ एवं सफल शिक्षक थे।" नगेन्द्रजी की अध्यापन कला की याद कोहलीजी यों करते हैं कि "वह पढ़ाना उस रचना और रचना की आत्मा का सजीव साक्षात्कार कराना है। जो डॉ. नगेन्द्र ने पढ़ा दिया तो पढ़ा दिया। उससे बाहर और कुछ नहीं है।"[1]

नगेन्द्रजी के व्यक्तित्व में मौलिक - सृजनात्मक आलोचक की प्रतिभा के साथ-साथ विद्वान अध्यापक तथा प्रशासक का मणिकांचन योग था। फिर भी अध्यापक के रूप में वे इतने कर्कश थे कि बच्चों को भी ऐसा लगता था कि उनकी क्लास में श्रोता बनकर सुना जा सकता था, गुरु शिष्य के आत्मीय संबन्ध की स्थापना की कामना ही व्यर्थ है। लेकिन निकट से परिचित होने पर कोहलीजी को मालूम हुआ कि नगेन्द्रजी संबन्धों में जान बूझकर कुछ औपचारिक दूरी बरतते हैं और अपने सहज भाव को ओढ़नेवाला एक मुखौटा पहन रखा है। अपनी निजी परेशानियों में उलझकर जब कोहलीजी का शोधकार्य पिछड़ गया तो प्रोत्साहन देते हुए नगेन्द्रजी का कथन था कि "जीवन का विष पीकर भी काम तो करना ही पड़ता है।"[2]

हिन्दी आलोचना और हिन्दी काव्यशास्त्र के स्तर को उच्चता और श्रेष्ठता प्रदान करनेवाले नगेन्द्रजी सर्जक साहित्यकार और गुणवाता के प्रति सजग संपादक भी रहे। नगेन्द्रजी के अध्यापक रूप का स्मरण करते हुए कोहलीजी का कथन हैकि एक - एक भाव को वे तीन-चार बार विभिन्न शब्दों में विभिन्न प्रकार से मँजी

हुई परिष्कृत शब्दावली में बताकर छात्रों के मन में उतार देते थे। उनके व्याख्यान साधारण से लेकर मेधावी छात्रों केलिए समान रूप से महत्वपूर्ण होते थे। हिन्दी भाषा, साहित्य, अध्यापन, आलोचना ग्रन्थ संपादन, आदि में प्रतिभा दिखाने वाले नगेन्द्रजी सफल प्रशासक भी रहे। दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग की अध्यक्षता से लेकर उच्चतर सरकारी हिन्दी समितियों और सरकारी नीति संबन्धी प्रायः सारी संस्थाओं के वे सूत्रधार अथवा महत्वपूर्ण सदस्य रहे। कोहलीजी के अनुसार बहुमुखी प्रतिभासंपन्न नगेन्द्रजी को अपनी उत्कृष्ठता और श्रेष्ठता के अनुकूल उचित श्रेय नहीं मिला है। पद्मभूषण, साहित्य अकादमी पुरस्कार आदि से विभूषित होने पर भी लेखक को अफसोस है कि अपने गुरुवर क्लांतिहीन साधक नगेन्द्रजी को भारतीय समाज से उचित श्रेय नहीं मिला।

'शब्द का मुहताज़, वाणी का धनी' शीर्षक अपने संस्मरण में श्री नरेन्द्र कोहलीजी हिन्दी साहित्य के मनोवैज्ञानिक कथाकार श्री जैनेन्द्र कुमार से संबन्धित अपनी यादों को संवारकर हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं। जब कोहलीजी जमशेदपुर के को - ऑपरेटिव कॉलेज में थे तब वहाँ के अध्यापक मिश्राजी औ.अन्य छात्रों के साथ खादीग्राम जाने का मौका मिला। गाँधीवादी विचारधारा, विनोबाजी की कार्यपद्धति तथा सर्वोदय की अवधारणा से अपने बच्चों को अवगत कराना ही मिश्राजी का लक्ष्य था। वहीं पर हिन्दी के प्रतिष्ठित और व्यातिप्राप्त साहित्यकार जैनेन्द्रजी से मिलने और उनसे बातें करने का अवसर मिला। खादीग्राम के निवासियों केलिए शारीरिक श्रम अनिवार्य रखा गया था। कलाकार या साहित्यकार के संदर्भ में शारीरिक श्रम की महत्ता के बारे में पूछा गया तो जैनेन्द्रजी का जवाब था कि "वैसे तो शरीर श्रम प्रकृति ने ही अनिवार्य कर दिया है। .... जब शारीरिक श्रम करना ही है तो क्यों न हम उसका उपयोग, उत्पादन केलिए करें।"[3]

साहित्य संबन्धी चर्चा के दौरान उनके पसंदीदा साहित्यांग के बारे में पूछे जाने पर उनका मंतव्य था कि वे कथा को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं। उनके अनुसार पहले कथा कविता के साथ -साथ बड़े - बड़े काव्यों के रूप में आती थी। लेकिन अब कथा तो कविता से मुक्त है। कथासाहित्य में उपन्यास हमारे जीवन के अधिक निकट होने के कारण उन्हें वही मान्य था। जब साहित्य-साधना के संबन्ध में प्रश्न आया तो जैनेन्द्रजी की स्वीकृति थी कि "मैं नहीं जानता कि यह साहित्य साधना क्या है। मेरे मन में जो कुछ आता है, मैं लिख देता हूँ। वह छप जाता है। आप लोग उसे खरीदते है और वह साहित्य हो जाता है।.... और इसी प्रकार मैं साहित्यकार हो गया हूँ।"[4]

प्रस्तुत संस्मरण में जैनेन्द्रजी के वैयक्तिक और साहित्यिक जीवन की कई झांकियाँ हमें मिलती हैं। जैनेन्द्रजी का बचपन अभावग्रस्त था। एक जैन पाठशाला में पढ़ने से जैनेन्द्र नाम पड़ा। ब्रह्मचर्य के संबन्ध में उनका मानना था कि "पुरुष स्वभावतः कठोर होता है, परंतु जिस पुरुष में स्नेह, दया, ममता आदि नारी - सुलभ गुण पाए जाते हैं, मैं उसे ही सच्चा ब्रह्मचारी मानता हूँ। जैसे कि गाँधीजी थे।"[5] बाद में जैनेन्द्रजी की रचनाओं से परिचित होने पर भी कोहलीजी उनके आख्यान -शिल्प, उनकी भाषा और उनकी कला से ही मुग्ध हाँ गया, उनके विचारों से नहीं। संयोगवश वर्षों

बाद कोहलीजी की पत्नी मधुरिमा का शोधकार्य 'जैनेन्द्र कुमारः चिंतन और सृजन' विषय पर शुरू हुआ। उस दौरान जैनेन्द्रजी से निकटतम संबन्ध स्थापित करने का अवसर उन्हें मिला। इसी बीच नरेन्द्रजी के प्रकाशित उपन्यास 'दीक्षा' पढ़ने की कामना जैनेन्द्रजी ने व्यक्त की। नरेन्द्रजी केलिए वह अपनी कृति केलिए मिलनेवाला सम्मान और पुरस्कार था।

नरेन्द्र कोहलीजी याद करते हैं कि नारी, नारी - पुरुष संबन्ध, प्रेम, विवाह, नारी मुक्ति इत्यादि ही बातचीत में जैनेन्द्रजी के प्रिय विषय रहे। खान-पान के विषय में संयमित रहनेवाले, शांत मुद्रा में एकदम सीधे तनकर बैठनेवाले जैनेन्द्रजी के उस रूप ने लेखक को बहुत ही प्रभावित किया था। जीवन के अंतिम दिनों में रोगग्रस्त होकर इस सर्वसम्मान प्राप्त, प्रतिष्ठित वयोवृद्ध लेखक को चिकित्सा और आवास की समुचित व्यवस्था के अभाव में बहुत सहना पड़ा। इतना कहते हुए कोहलीजी यह संस्मरण समाप्त करते हैं कि विधाता लेखक को धन - संपत्ति दे या न दे उसे वाणी की समृद्धि और अमरता अवश्य प्रदान करे।

हिन्दी की किसानी संस्कृति के कवि बाबा नागार्जुन से संबन्धित सांस्मरण इस संकलन में अपेक्षाकृत लंबा है। इसमें अपने कॉलेज में संपन्न हिन्दी साहित्य - परिषद् के वार्षिकोत्सव में बाबा नागार्जुन विशिष्ट अतिथि रहे। वे सदा ही छोटा भाषण देनेवाले थे और बीच से कविता की पंक्तियाँ भी सुनाते थे। अगले दिन भी वहाँ वे आमंत्रित थे। देखने में वे तो साधारण लंबाई, दुबला - पतला शरीर, कुछ भीतर धँसी हुई आँखें, कुछ सफेदी लिए खिचड़ी बाल, कुछ गंजा सिर, सफेद खादी का कुर्ता और धोतीवाले थे। घुमक्कड़ व्यक्तित्ववाले नागार्जुन अपने साथ भी कोई सामान ले जाना अपनी गति में बाधक समझता था। संगोष्ठियों में दिये जानेवाले अभिनन्दन पत्र भी उनकेलिए बोझ था।

मिथिला के एक साधारण गरीब किसान के बेटे के रूप में जन्म लेकर विपरीत परिस्थितियों में शिक्षा छोड़ देना पड़ा था नागार्जुन को। बाद में संस्कृत पाठशाल में उनकी भर्ती हो गयी। संस्कृत पढ़कर अपने विद्यार्थी जीवन में ही वे संस्कृत श्लोक गढ़ा करते थे। साहित्य लेखन के संबन्ध में उनका विचार था कि यदि पूर्ण साहित्यकार बनता है तो गद्य और पद्य दोनों में लिखना चाहिए। साथ ही साथ नवोदित लेखकों और कवियों को लेखन-कार्य की ट्रेनिंग भी देनी चाहिए। संस्कृत और मैथिली में 'यात्री' नाम से लिखनेवाले नागार्जुन को लंका में जब बौद्ध भिक्षु होकर जीना पड़ा तभी नागार्जुन नाम दिया गया।

हिन्दी साहित्य में अज्ञेय को सर्वोत्तम साहित्यकार माननेवाले नागार्जुन का कविता के संबन्ध में मत था कि कविता कभी भी लंबी नहीं होनी चाहिए, जो लोगों को बोर करती हैं और कविता किसी करेट टापिक पर ही लिखी हुई हो। अक्सर कवि सम्मेलनों में वे "अमल धवल गिरि के शिखरों पर बादल को घिरते देखा है...." कविता सुनाते थे जिसका सृजन उन्होंने हिमालय भ्रमण के दौरान किया था। कविता लेखन में छन्द की आवश्यकता पर वे सदा बल देते थे। लेखक स्मरण करते हैं कि सालों बाद एक बार अपने घर आते समय उनके बड़े बेटे कार्तिकेय को वे छन्द शास्त्र का आरंभिक ज्ञान देते थे। समय की गति के साथ - साथ लेखक के परिवार समेत नागार्जुन से घनिष्ठ संबन्ध हो गया। अपनी लेखन प्रक्रिया के बारे में वे कहा करते थे

कि "एक बार लिखने बैठूँगा, तो लिखकर ही छोड़ूँगा। मृत्यु भी आएगी तो धकेल दूँगा पीछे।"[6]

नागार्जन का व्यक्तित्व ऐसा था कि वे धनोपार्जन केलिए कुछ भी करना पसंद नहीं करते थे। इसका संघर्ष तो घर में चलता भी था। लेखक और नागार्जुन के बीच पत्रों से संबन्ध बना रहा। लेकिन कवि का घुमक्कड़ होना इसमें बाधा थी। अक्सर वे पत्र पद्य शैली में लिखते थे और स्वनिर्देश में 'अर्जुन नागा' भी रखते थे। लेखक के घर में तो वे आते थे और भोजन बहुत स्वाभाविक रूप से उनका होता था। लेखक की पत्नी मधुरिमा उनकी पसंद की चीज़ें बना देती थी।

कवि नागार्जुन की सरलता, सहजता और साधारणता पर लेखक इतने मुग्ध थे कि 'अभिज्ञान' नामक अपनी रचना का यायावर बाबा के रूप में बाबा नागार्जुन को ही चित्रित किया है, जिसे पढ़कर बाबा ने कहा था - "ऐसा क्यों नहीं हो सकता कि हम किसी परिचित और जीवित व्यक्ति कोअपनी कृतियों का चरित्र बनाएँ। मेरे किसी उपन्यास में नरेन्द्र जैसा पात्र हो सकता है और नरेन्द्र के उपन्यास में मैं भी पात्र हो सकता हूँ।"[7]

आपात् स्थिति घोषित हुई तो बाबा बन्दी हो गये। उन दिनों वे सरकार विरोधी राजनीतिक कविताएँ ही सुना करते थे। नागार्जुन के स्वभाव की एक विशेषता लेखक यह बताते है कि वे अपनी पसन्द के लोगों से मिलना-जुलना पसन्द करते हैं, बड़ी सभाओं की अपेक्षा गोष्ठियों को वरीयता देते हैं, धनी मानी उच्चवर्गीय लोगों की तुलना में सामान्य जन को पसन्द करते हैं। गोष्ठियों में वे अपनी बात प्रस्तुत करते हैं। लंबे भाषण उनके वश की बात नहीं। वे कभी भी अन्तर्मुखी नहीं रहे। सास विश्व उनका परिवेश है। विश्व की खबर लेते रहते थे। इसकेलिए उन्हें समाचार पत्र, टी.वी. रेड़ियो सब चाहिए।

वस्तुतः बाबा नागार्जुन से लेखक का पच्चीस वर्षों का स्नेह संबन्ध था। प्रायः पत्र व्यवहार, कभी भेंट और कभी - कभी आकर एक आध दिन उनके घर में ठहरते थे। लेकिन जब लेखक ने नया घर बसाया वहाँ उनका आगमन नहीं हुआ। नागार्जुन के इस वाक्य की याद करते हुए अपनी प्रतीक्षा को बनाये रखते हुए कोहलीजी यह संस्मरण समाप्त करते हैं कि "जिसे मिलना चाहें, उसकेलिए हम अत्यत सुलभ हैं; न मिलना चाहें तो अत्यंत दुर्लभ हैं। हम महाकाल को अपने कंधों पर लिए चलते हैं।"[8]

'बहुत बहुत प्यार शरद जोशी' नामक अपने संस्मरण में कोलीजी ने बहुत शब्दों में चमत्कारपूर्ण व्यंग्य रचनाओं के माध्यम से समाज के अन्याय और अत्याचार पर प्रहार करनेवाले साहित्यकार शरद जोशी से संबन्धित अपनी स्मृतियों को उभारा है। लेकिन शरदजी से लेखक की मित्रता अकारण टूट गयी। लेखक को इस पर बहुत दुःख भी था। लेकिन जब शरदजी 'हिन्दी एक्सप्रेस' पत्रिका के संपादन कर रहे थे तब कोहलीजी उसमें छपने केलिए एक आत्मकथात्मक निबन्ध भेजा तो शरदाजी ने उसे वापस भेजा। आगे ज़ोरदार रचनाओं की प्रेरणा देते हुए बहुत प्यार के साथ पत्र भेजा तो कोहलीजी आश्वस्त हो गये।

श्री नरेन्द्र कोहली 'ममतामयी' नामक संस्मरण में अपनी प्राध्यापिका एवं विभागाध्यक्षा श्रीमती सावित्री सिन्हा की याद करते हैं जिनसे उन्होंने एम.ए की कक्षा में पढ़ते समय अपने कहानी संग्रह की भूमिका लिखवाई

थी। एक रीड़र, प्रोफेसर, प्रशासिका, लेखिका, विदूषी के रूप में सबसे ऊपर एक सहज मानव के रूप में लेखक श्रीमती सिन्हाजी की याद करते हैं।

'वक्रता और सरलता' नामक संस्मरण में कोहलीजी अपने एक मेधावी छात्र सुरेश के बारे में अपनी चिंताओं पर प्रकाश डाला है। सुरेश तो बहुत परिश्रमी, प्रखर जिज्ञासु छात्र होने के साथ - साथ संकोची और बेहद वक्र भी था। उसमें साहित्य सृजन की प्रतिभा भी थी। फिर भी उसने बैंक की नौकरी चुन ली। फिर भी वह व्यंग्यात्मक लेख लिखकर उसका प्रकाशन करता था। सुरेश का एक उपन्यास 'युद्ध' नाम से छपा तो कोहलीजी समझ नहीं पा रहा था कि उसने यह नाम क्यों रखा जो कि लेखक के भी एक उपन्यास का नाम था। चलते - चलते सुरेश पहले से ज़्यादा गंभीर होता गया। कोहलीजी वक्रता को बौद्धिकता का एक अंग ही मानता है। प्रखर, वक्र एवं तेजस्वी सुरेश भी अपने स्वभाव की इन्हीं विशेषताओं के कारण अहंकारी एवं उद्दंड़ बताया गया। कॉलेज में अनेक संदर्भों में उस प्रखर सुरेश को प्रोत्साहित करने की शिकायत भी लेखक पर होती थी। उसपर टिप्पणी करते हुए लेखक का कथन है कि उसकी वक्रता के साथ - साथ सरलता को भी समझ लेना चाहिए।

'मेरी हमदम मेरी दोस्त' संस्मरण कोहलीजी ने अपनी सहधर्मिणी मधुरिमा पर लिखा था। स्नेहाधिक्य में छोटी- छोटी बातों केलिए अपने प्रिय से झगड़नेवाली मधुरिमा, उसे हाथ पकड़कर मनानेवाले लेखक आदि पाठकों के हृदय को मोहित कर लेते हैं।

इसप्रकार हम देख सकते हैं कि श्री नरेन्द्र कोहलीजी के संस्मरणात्मक लेखों के प्रस्तुत संकलन 'स्मरामि' में हिन्दी साहित्य के वरिष्ठ साहित्यकारों के वैयक्तिक एवं साहित्यिक जीवन से संबन्धित लेखक के अनुभवों को वाणीबद्ध किया गया है। मूलतः कथाकार होने से उनके संस्मरण भी जीवंत कथा और रेखाचित्र की सीमाओं को छूनेवाले हैं। शुद्ध खड़ीबोली हिन्दी में संयमित वर्णन पटुता रखनेवाले इन संस्मरणों में विवेच्य रचनाकार या व्यक्तित्व के गुण-दोषों को तटस्थ दृष्टि से विश्लेषण करने का प्रयास सराहनीय है।

संदर्भ

1. स्मरामि नरेन्द्र कोहली, वाणी प्रकाशन; वर्ष 2000 पृ.सं. 10 प्रकाशक :
2. वही, पृ.सं. 15
3. वही, पृ.सं. 28
4. वही, पृ.सं. 30
5. वही, पृ.सं. 32
6. वही, पृ.सं. 57
7. वही, पृ.सं. 77
8. वही, पृ.सं. 90

♦ सहायक आचार्य
हिन्दी विभाग
सरकारी महिला महाविद्यालय
तिरुवनन्तपुरम।

सूचना

NET (हिन्दी) तथा Spoken Hindi की कक्षाओं में प्रवेश पाने को इच्छुक व्यक्ति संपर्क करें -

फोन : 9946253648, 0471 - 2332468

'अभिज्ञान' उपन्यास की रीढ़ की हड्डी 'कर्म सिद्धांत'

♦ डॉ. धन्या. एल

मुझे संतोष है कि 'अखिल भारतीय हिंदी अकादमी' से प्रकाशित होनेवाली त्रैमासिक हिंदी पत्रिका 'शोध सरोवर पत्रिका' नरेंद्र कोहली जी जैसे महान लेखक पर विशेषांक प्रकाशित कर रही है। मैं अपनी अध्यापिका तथा 'अखिल भारतीय हिंदी अकादमी' की सचिव डॉ.पी.लताजी को यह विशेषांक प्रकाशित करने केलिए बधाई देती हूँ।

नरेंद्र कोहली आज के युग के जाने-माने उपन्यासकार हैं। डॉ. नरेंद्र कोहली का जन्म अविभाजित भारत के पंजाब के सियालकोट नगर में 6 जनवरी 1940 को हुआ था जो भारत के विभाजन के पश्चात् पाकिस्तान में हो गया था। आपकी माता का नाम विद्यावंती और पिता का नाम परमानन्द कोहली था। हाईस्कूल तक उर्दू भाषा के माध्यम से शिक्षा प्राप्त करनेवाले नरेंद्र कोहली ने जमशेदपुर कोऑपरेटिव कॉलेज में प्रवेश होने पर हिंदी का अध्ययन आरंभ किया और अंत में दिल्ली विश्वविद्यालय से एम. ए एवं सन् 1970 में डॉक्टरेट की उपाधियाँ प्राप्त कीं। दिल्ली विश्वविद्यालय के प्राध्यापक पद से सन् 1995 में स्वेच्छापूर्वक अवकाश ग्रहण कर लिया। कोहली जी की पत्नी डॉ.मधुरिमा कोहली भी दिल्ली विश्वविद्यालय में प्राध्यापिका थीं। आपके दो पुत्र हैं कार्तिकेय और अगस्त्य। लेकिन कुछ ही समय बाद इन्होंने हिंदी में लेखन-कार्य प्रारंभ किया।

कोहलीजी ने साहित्य की सभी प्रमुख विधाओं और आलोचनात्मक साहित्य में अपनी लेखनी चलायी। उन्होंने शताधिक श्रेष्ठ ग्रंथों का सृजन किया। कोहलीजी के लेखन का नियमित प्रकाशन सन् 1960 से आरंभ हुआ। उन्हें अनेकानेक उच्चतम पुरस्कार एवं सम्मान प्राप्त हुए हैं। जनवरी 2017 में 'पद्मश्री' और 'भूतो न भविष्यति' उपन्यास केलिए, 2012 में प्रतिष्ठित 'व्यास सम्मान' से अलंकृत नरेंद्र कोहली की गणना हिंदी के प्रमुख साहित्यकारों में होती है। सन् 1947 के बाद के हिंदी साहित्य में उनका योगदान अमूल्य है।

नरेंद्र कोहली का रचना संसार शिल्पगत विविधताओं से युक्त है। कोहलीजी ने अपने युग की समस्याओं को उपन्यास, नाटक, कहानी और व्यंग्य द्वारा लोगों तक पहुँचाने का सफल प्रयत्न किया है। उपन्यास व्यक्ति जीवन का यथार्थ चित्रण है। आज के उपन्यास साहित्य में नरेन्द्रजी के उपन्यास अपना अलग और विशिष्ट स्थान रखते हैं। नरेन्द्रजी ने सन् 1972 में उपन्यास लिखना प्रारंभ किया। उनके लगभग 23 उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। वे अपने समकालीन उपन्यासकारों से भिन्न हैं। नरेंद्र कोहली एक अत्यंत संवेदनशील, प्रसन्न चित्त, महत्वाकांक्षी व्यक्ति हैं। ईमानदारी इनके व्यक्तित्व का महत्वपूर्ण पहलू रहा है।

नरेंद्र कोहली के साहित्य-सृजन के मूल उद्देश्य हैं पाकों को अपनी सांस्कृतिक धरोहर से परिचित कराना, संस्कारों के धरातल पर जीवन के विवेक और कर्तव्य बोध से परिचित कराना आदि। इन्होंने अपने

उपन्यासों में, समाज में व्याप्त विषमताओं, जीवन संघर्ष, अत्याचार, अनाचार, वर्ग संघर्ष, शोषण, भ्रष्टाचार आदि को प्रमुख रूप से वाणी दी है। वे अपने उपन्यासों द्वारा जीवन को विवेक और कर्तव्यबोध से परिपूर्ण बनाने की शिक्षा देते हैं। कोहली जी का विश्वास सामाजिक आदान-प्रदान में है। वे जिस तरह अपने दुखों का साधारणीकरण करते हैं, उसी तरह दूसरों के दुखों को अंगीकार भी करते हैं।

कोहली जी की आरंभिक रचनाएँ उनके निजी परिवेश एवं वैयक्तिक अनुभूतियों का दस्तावेज़ हैं, जबकि बाद की रचनाएँ व्यक्तिगत जीवन के साथ-साथ राष्ट्रीय जीवन के अनेकानेक विसंगत उपादानों से उद्धृत हुई हैं। इन्होंने जीवन के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं नैतिक आदि सभी क्षेत्रों में व्याप्त विसंगतियों पर कठोर प्रहार किया है। भारत पुराण कथाओं से संपन्न देश है और आधुनिकता के बावजूद यह पुराणप्रियता शिक्षित मानस में जमी हुई है। हिंदी साहित्य में महाकाव्यात्मक उपन्यास की विधा को प्रारंभ करने का श्रेय नरेंद्र कोहली को ही जाता है। उन्होंने प्रख्यात कथाओं पर आधृत मौलिक उपन्यास लिखे हैं। उनकी रचनाएँ भारतीयता की जड़ों तक पहुँचती हैं। "हिंदी लेखक पर समकालीनता अथवा समसामयिकता का इतना प्रभाव है कि वह ऐतिहासिक युग में महज ऐतिहासिक तथ्यों को अपनी समसामयिकता आधुनिक दृष्टि से देखता है और पुराण या इतिहास और आधुनिकता के समन्वित नज़रिए से रचना केलिए प्रेरित होता है। एक तरह से आधुनिक नज़रिए से मिथकों की पड़ताल हिंदी उपन्यास का एक महत्वपूर्ण वैशिष्ट्य रहा है।"[1]

नरेंद्र कोह्लीजी ने ऐतिहासिक एवं पौराणिक कथाओं को आधुनिक रूप में डाला है। उन्होंने प्राचीन महाकाव्यों को आधुनिक पाकों केलिए गद्य रूप में लिखने का एक नया चलन शुरू किया और पौराणिक कथानकों पर अनेक साहित्यिक कृतियाँ रचीं। उनकी रचनायें संवेदनशील होने के साथ-साथ सहज भी होती हैं। उन्होंने रामकथा, कृष्णकथा, पांडवकथा और स्वामी विवेकानंद के जीवन पर आधारित उपन्यास श्रृंखलाओं की रचना की और देखते ही देखते वे साहित्य के आकाश पर छा गए। आज का जीवन द्वंद्वात्मक आत्मसंघर्ष का जीवन है। उनके नाटकों, उपन्यासों में अनाचार का कड़ा विरोध दिखायी देता है। उन्होंने पौराणिक कथा को नए ढंग से प्रस्तुत किया और उसमें निहित पौराणिक घटना चक्र और सनातन जीवनमूल्यों की नयी व्याख्या की है। महाभारत की कथा पर आधारित नरेंद्र कोहली के आठ उपन्यास हैं। इनमें से सात उपन्यास महासमर शीर्षक से सात खंडों में विभाजित किए गए हैं और एकमात्र उपन्यास 'अभिज्ञान' कृष्ण सुदामा भेंट पर आधारित है।

सन् 1981 में प्रकाशित 'अभिज्ञान' श्रीकृष्ण के कर्मसिद्धांत की सशक्त व्याख्या करनेवाला अभिनव उपन्यास है। अभिज्ञान नरेंद्र कोहली का राजनीतिक उपन्यास है। अभिज्ञान कृष्णकथा से सम्बंधित है। इसकी पृष्ठभूमि राजनैतिक थी। प्रस्तुत उपन्यास सुदामा और कृष्ण की प्रख्यात कथा पर आधृत पौराणिक दार्शनिक उपन्यास है। इसमें लेखक ने सुदामा और कृष्ण की कहानी को नए ढंग से कहा है। यहाँ कृष्ण राजनैतिक रूप से प्रभावशाली हैं एवं उनका मित्र सुदामा कृष्ण के संपर्क में आकर धनी एवं समाज में

प्रसिद्ध हो जाता है। इस उपन्यास में श्रीमद्भागवद् गीता के कर्मसिद्धांत की नयी, रोचक और औपन्यासिक व्याख्या की गई है। सुदामा का जीवनचरित्र, उसका परिवार और उसके माध्यम से समाज पर चोट, सुदामा का श्रीकृष्ण के यहाँ द्वारका जाना, उसके साथ बातचीत करना और श्रीकृष्ण का कर्म सिद्धांत आदि रूप प्रस्तुत उपन्यास में देख सकते हैं। श्रीकृष्ण एवं सुदामा की मित्रता को आधार बनाकर लेखक ने कर्मसिद्धांत स्पष्ट करने केलिए प्रस्तुत उपन्यास के कथ्य को तैयार किया है।

'अभिज्ञान' की कथा इस प्रकार है -निर्धन और अकिंचन सुदामा को सामर्थ्यवान श्रीकृष्ण सार्वजनिक रूप से अपना मित्र स्वीकार करते हैं, तो सामाजिक, व्यावसायिक और राजनीतिक क्षेत्रों में सुदामा का साख तत्काल बढ़ जाता है। ....किन्तु इस कृति का मेरुदंड भगवद्गीता का कर्म सिद्धांत है। यह अद्भुत है, अभूतपूर्व है। इस तर्कशैली की किसी भी रूप में अवहेलना नहीं की जी सकती। इस उपन्यास का कृष्ण भगवान् न होकर एक आम इंसान है, जो इसी धरती पर पैदा हुआ है, एक कर्मसिद्धांत पर विश्वास रखनेवाला पुरुष है। सम्पूर्ण उपन्यास कर्मयोग पर आधारित है। इस कृति में न परलोक है, न स्वर्ग और नरक, न जन्मांतरवाद। कर्म सिद्धांत को इसी पृथ्वी पर एक ही जीवन के अंतर्गत, ज्ञानेन्द्रियों और बुद्धि के आधार पर, वैज्ञानिक सिद्धान्तों के अनुरूप चित्रित किया गया है।

सुदामा का परिवार अभावग्रस्त है। उसके परिवार में उसकी पत्नी सुशीला और दो बेटे ज्ञान तथा विवेक हैं। सुदामा दर्शन-शास्त्र पर ग्रन्थ लिखने में व्यस्त है। उपन्यास में लेखक ने स्पष्ट किया है कि सुदामा दिनभर अपने ग्रंथों में उलझे रहते थे और धन केलिए कोई प्रयत्न नहीं करते थे, इसलिए गरीब थे। इस तथ्य को लेखक ने बच्चों की लड़ाई द्वारा स्पष्ट किया है। सुदामा के बेटे ज्ञान और पड़ोसी के बेटे रोहित दोनों का आपस में झगड़ा हो जाता है तो रोहित ज्ञान से कहता है - "तुम्हारे पिता कोई काम नहीं करते। आलसियों के समान घर पर पड़े रहते हैं। मेरे पिता प्रतिदिन काम पर जाते हैं और उन्हें वेतन मिलता है। तुम्हारे घर में कोई भी अच्छी वस्तु नहीं है। बस तालपात्र भरे हुए हैं, या पुराने कपड़ों में लपेट लपेटकर पोथियाँ रखी हैं।"[2] सुदामा केवल ज्ञानार्जन करना चाहता है, धनार्जन नहीं। बाबा सुदामा के परिवार के एक हितचिंतक हैं। सुदामा तथा उसके परिवार का आभावग्रस्त होता उन्हें चिंतित करता है। बाबा सुदामा को सलाह देते हैं कि "वह ज्ञान मार्ग छोड़कर अपने परिवार केलिए धन जुटाए। अन्य आचार्य, पंडित तथा ज्ञानी की तरह किसी गुरुकुल में अपने ज्ञान का अर्जन करे और धन कमाये जिससे उसका परिवार सुखी रह सके।"[3] बाबा कहते हैं- "घरों में व्यवस्थापूर्वक रहनेवालों के जीवन में कोई विशेष आरोह-अवरोह नहीं है। उनका कुशल मंगल एकरस ही रहता है....। ... हाँ, बाबा।"[4] लेकिन सुदामा का मन यह नहीं चाहता कि ज्ञान के बदले में धन कमाये। लेकिन उनकी पत्नी सुशीला हारकर अपने परिवार केलिए रोटी जुटाने केलिए नगर में जाकर नौकरी करना चाहती है, तो सुदामा अत्यंत दुःखी होता है और विवश होकर अपने मित्र कृष्ण से मिलने केलिए द्वारका जाने केलिए तैयार होता है। इस प्रकार आगे चलकर लेखक इस पौराणिक मत की पुष्टि करता है कि किस प्रकार सुदामा की झोंपड़ी महल में परिवर्तित हो गई । सुदामा

का कृष्ण यथोचित आदर सत्कार करते हैं। इसी समय उद्धव भी द्वारका आया। तब सुदामा, कृष्ण और उद्धव भक्ति के बारे में बातें करते हैं। कृष्ण भक्ति और ज्ञान का अंतर स्पष्ट करते हैं। कृष्ण भक्ति को भावना और ज्ञान को चिंतन मानते हुए उन्हें कर्म में परिवर्तित्त करते हैं।

जब सुदामा वापस अपने कुटीर में पहुँच गये तब कुटीर से उनकी पत्नी सुशीला हाथ में दीपक लिए बाहर निकली। वह समाचार देती है कि कुलपति सुदामा केलिए गुरुकुल का निर्माण हो रहा है। सुदामा जान लेते हैं कि यह सब कृष्ण की लीला है। उसने अपना मित्रत्व अच्छी तरह निभाया है। अंत में सुदामा यह निश्चय करता है कि कृष्ण के समान वे भी संघर्ष करेंगे। वे अपने विद्यार्थियों को चिंतन के साथ-साथ कर्म के राजपथ पर भी चलना सिखायें। अन्यायी शक्ति मनुष्य के प्रयत्न के सामने ख़डी नहीं रह सकती। प्रयत्न कभी निष्फल नहीं होता। लेखक ने आधुनिक दृष्टि प्रदान करते हुए लिखा है कि सुदामा का कृष्ण से मिलने के बाद राजनीतिक महत्व बढ़ जाता है और हर तरह के छोटे से छोटे और बड़े से बड़े व्यक्ति सुदामा से अपना संपर्क बनाना चाहते हैं। यही सोचकर सुदामा के ग्राम प्रमुख ने सुदामा केलिए घर बनवाना शुरू किया। यह सब कुछ लेखक सुदामा के मुँह से ही कहलवाता है, "सुदामा उन व्यापारियों, प्रबंधक, ग्रामप्रमुख या ऐसे ही सब लोगों केलिए महत्वपूर्ण हो गए हैं, क्योंकि वह कृष्ण के मित्र के रूप में विख्यात हो गए हैं।"[5] क्योंकि कृष्ण एक राजनेता हैं। आगे चलकर लेखक लिखता है, "आज इनकी पूजा श्रद्धा सब कुछ कृष्ण केलिए हैं और कृष्ण के माध्यम से सुदामा केलिए है...यह....किसी गुण केलिए नहीं। किसी व्यक्ति केलिए नहीं, वह राजसत्ता केलिए है।"[6]

'अभिज्ञान' के कथानक की रचना 'गीता' में वर्णित कृष्ण के कर्मसिद्धांत की आधार भूमि है। लेकिन यह उपन्यास कर्मसिद्धांत की पुष्टि केलिए नहीं, उसे समझाने केलिए है, जिससे साधारण मनुष्य भी अपने जीवन में इसका पालन कर सकता है। यह सांस्कृतिक उपन्यास है जो प्राचीन और आज की शिक्षा प्रणाली, गुरु-शिष्य परंपरा की अंतर्कथा भी है। कृष्ण के अनुसार कर्म होगा तो फल भी जरूर मिलेगा, लेकिन सुदामा के अनुसार कर्म या परिश्रम करनेवाला असफल और कामचोरी करनेवाला लाभ में रहता है। सुदामा स्वयं अपना उदहारण देते हुए कहता है कि 'जो परिश्रम करता है, वह असफल रहता है और जो कामचोरी करता है, वह अन्ततःलाभ में रहता है।' ...सुदामा के अनुसार उसने ज्ञान प्राप्त किया तो उसका मतलब है धन तथा पद प्राप्त किए। लेकिन कृष्ण उसे समझाते हुए कहते हैं कि "जिसने धन की कामना की उसे केवल धन मिला, ज्ञान नहीं मिला, जब कि सुदामा को ज्ञान मिला है।"[7] सुदामा कृष्ण से कहता है कि "अगर कर्म करने पर ही फल मिलता है तो पंडित, पुरोहित, कलाकार, कवि निर्धनता से लड़ते-लड़ते थक जाते हैं और एक दिन किसी राजा के दरबार में पहुँचकर धन-सम्पदा प्राप्त करते हैं। लेकिन कृष्ण इसे विद्वानों की चाटुकारिता का मूल्य समझते हैं।"[8] कृष्ण कहते हैं कि "एक प्रेम मिश्रित भक्ति है और दूसरी सीधी-सीधी चाटुकारिता। भक्ति एक भाव है और चाटुकारिता कर्म,यद्यपि निकृष्ट कर्म है। पर कर्म वह है और उसका फल आचार्य को मिलेगा।"[9] शुद्ध भावात्मक भक्ति के

बारे में कृष्ण का विचार है "भावात्मक भक्ति, व्यक्ति को स्वयं को तपाकर स्वच्छ करने का प्रयत्न है।"[10] ईश्वर की भक्ति करने से धन-संपदा, सुविधाएँ, मान-सम्मान मिलती हैं। कृष्ण कहते हैं कि "मनुष्य की आवश्यकता की एक निश्चित सीमा होती है। उस आवश्यकता की सीमा के पार ये सुख भोग रोग बन जाते हैं, क्योंकि "आवश्यकता से अधिक भोग, शारीरिक और मानसिक आलस्य, रोग और अहंकार की ओर ले जाता है।"[11]

निष्काम कर्म सिद्धांत के बारे में भी श्रीकृष्ण के विचार अत्यंत मौलिक हैं। "प्रकृति कर्म का फल तत्काल देती है; किन्तु अकर्म का दंड भी उसी शीघ्रता से प्रदान करती है।"[12] श्रीकृष्ण के अनुसार निष्काम कर्म का अर्थ है, "व्यक्ति जब जो कार्य कर रहा हो, उसे किसी अन्य वस्तु का साधन न मानकर, उस कार्य को भी अपना साध्य माने, उसमें मन लगाए। ऐसे में प्रकृति उसे उसके कर्म का उसकी अपेक्षा से अधिक फल देगी।"[13] कामना और कर्म का सम्बन्ध स्पष्ट करते हुए कृष्ण कहते हैं कि कामना के साथ कर्म न हो तो भक्ति उस कामना को पूर्ण नहीं करती। कृष्ण का कर्म में प्रगाढ़ विश्वास है। कर्मयोगी कृष्ण का कर्मफल सिद्धांत अत्यंत मौलिक है। "-व्यक्ति केवल कर्म में विश्वास करे। उसे अपनी सीमित दृष्टि से देखकर उसके फल को सीमित न करे। फल को वह प्रकृति की व्यवस्था पर छोड़ दे...।"[14]

सुदामा के द्वारका प्रवास का उपयोग लेखक ने दोनों मित्रों के मध्य कृष्ण के प्रिय विषय कर्म सिद्धांत की चर्चा के रूप में किया है। कृष्ण सुदामा के सच्चे मित्र हैं। वे सुदामा को धन देकर याचक नहीं बनाते। सुदामा दर्शन शास्त्र के विद्वान हैं। वे निरंतर ज्ञान प्राप्त करते रहते हैं। उनका ज्ञान प्राप्त करना कृष्ण के अनुसार कर्म है और उस कार्य का फल सुदामा को मिल जाता है। उन्हें सुदामा पुरी में गुरुकुल का कुलपति बनाया जाता है। उनके कर्मसिद्धांत, निष्काम कर्मफल सिद्धांत आदि अत्यंत मौलिक हैं। कृष्ण सही अर्थ में सच्चे कर्मयोगी हैं। उन्होंने सुदामा को बिना बताये, फ्रिना जताये बहुत कुछ दिया। जिससे सुदामा अनभिज्ञ है। सुदामा के गाँव पहुँचने से पहले ही कृष्ण ने सारा प्रबंध किया है। उसके गाँव का नामकरण सुदामापुरी कर दिया है तथा उसके लिए गुरुकुल बनवाया जा रहा है, जिसके कुलपति सुदामा होंगे।

डॉ.अवनीजेश अवस्थी को दिए साक्षात्कार में डॉ. नरेंद्र कोहली ने कहा "सारी पौराणिक कथाएँ मेरे मन में प्रतिबिम्ब के रूप में जागती हैं। मेरे मन में कृष्ण और सुदामा जागे.....सुदामा तो वही सुदामा था पर जिस दिन कृष्ण ने सार्वजनिक रूप से उनको अपना मित्र स्वीकार करके गले लगा लिया, उस दिन सुदामा का महत्व बढ़ गया; और उसके लिए सोने के महल ख़डे हो गए। मेरे सामने यह एक राजनीति की थी। इस कथा को लिखने केलिए मैं कृष्ण के विषय में पढ़ रहा था। उनके चरित्र ने जिस तरह से मुझे आकृष्ट किया। मेरे उपन्यास अभिज्ञान की कथा चाहे राजनीतिक हैं, किन्तु उसकी रीढ़ की हड्डी कर्म सिद्धांत है। कर्म सिद्धांत .....मुझे लगता है कि यदि हम अध्यात्म छोड़ दें, जन्माँतरवाद छोड़ दें, पुनर्जन्म की बात छोड़ दें, तो भी इस जीवन में बिल्कुल स्थूल रूप से, भौतिक रूप में जो घटनाएँ घटित होती हैं, वे कर्मसिद्धांत को प्रमाणित करती हैं। जब न्यूटन कहता है कि 'एवेरी एक्शन हैज़

इट्स ईक्वेल एँड आपोज़िट रिएक्शन' तो वह बिल्कुल वही बात कह रहा है। कृष्ण कहते हैं कि प्रत्येक कर्म का फल होता है। कर्म एक्शन है और फल रिएक्शन है। मैं मानता हूँ कि यह बिल्कुल वैज्ञानिक सिद्धांत है।"[15]

नरेंद्र कोहली जी ने 'अभिज्ञान' में सुदामा के माध्यम से आज के साहित्यकारों, अध्यापकों, शिक्षा संस्थाओं, समाज के नेताओं और सत्ता के मद पर भी बाण चोट किया है। इस उपन्यास के कथानक की रचना गीता में वर्णित कृष्ण के कर्मसिद्धांत की आधारभूमि पर हुई है। किन्तु यह रचना कर्मसिद्धांत की पुष्टि केलिए नहीं, उसे समझने केलिए है। इससे उपन्यास और भी अधिक रोचक हो गया है और घटनाएँ जानी-पहचानी सी लगती हैं। इस प्रयत्न के निष्कर्ष, कृष्ण और सुदामा की कथा के माध्यम से प्रस्तुत किए गए हैं। निष्काम कर्मफल सिद्धांत को जीनेवाले आदर्श पात्रों का निर्माण कर उपन्यासकार अपने प्रयोजन में सफल बन पड़े हैं। इस प्राचीनं और प्रख्यात कथानक के भीतर से प्रकट होते हुए ये निष्कर्ष आपके अपने समय की सच्चाई है। प्रकृति की जटिलता के भीतर छिपे ये तथ्य उद्घटित होकर हमें अपने ही जीवन को देखने की एक नई दृष्टि देते हैं।

पौराणिक कथा के सर्वश्रेष्ठ उन्नायक नरेंद्र कोहली ने समूचे युग को नयी दृष्टि से प्रस्तुत किया है। चरित्रों का मानवीकरण किया है। इसके माध्यम से लेखक ने एक विचार क्रांति का सूत्रपात किया है। इस प्रकार नरेंद्र कोहली एक संवेदनशील, महत्वाकांक्षी, ईमानदार, प्रतिभा संपन्न तथा बहुचर्चित साहित्यकार हैं। डॉ. नरेंद्र कोहली हिंदी में अपने ढंग के अलग तरह के साहित्यकार हैं मिथकीय धरातल पर उन्होंने रचना की। नई दिशा की खोज करने के साथ ही उसकी सार्थकता को भी स्थापित किया है। उपन्यास को पढ़ते हुए ऐसा लगता है कि यह सारा उपन्यास हमारे आज के जीवन पर आधारित है। आज भी बुद्धिजीवियों की वही दशा है जो प्राचीन काल में थी। आज भी व्यक्ति अपने बुद्धि-कौशल से प्रसिद्ध नहीं होता है। आलोच्य उपन्यास सिद्ध करता है कि अकिंचन सुदामा को समर्थ राजनेता श्रीकृष्ण जब सार्वजनिक रूप से अपना मित्र स्वीकार करते हैं, उसके उपरांत सामाजिक,व्यावसायिक तथा राजनीतिक क्षेत्रों में सुदामा का महत्व तत्काल बढ़ जाता है। श्रीकृष्ण का कर्मसिद्धांत साधारण पाक तक लाना प्रस्तुत रचना का मूल उद्देश्य है।

सन्दर्भः

1 समकालीन उपन्यास रचना और परिवेश, नयना, अक्षय प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 33,34

2 वही, पृष्ठ संख्या 85

3 नरेंद्र कोहली के उपन्यासों का अनुशीलन, डॉ. प्रदीप लाड, अभय प्रकाशन, कानपुर, 2012, पृष्ठ संख्या 215

4 www.pustak.org

5 समकालीन उपन्यास रचना और परिवेश, नयना, अक्षय प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 85

6 वही, पृष्ठ संख्या 86

7 नरेंद्र कोहली के उपन्यासों का अनुशीलन, डॉ. प्रदीप लाड, अभय प्रकाशन, कानपुर, 2012, पृष्ठ संख्या 220

8 वही, पृष्ठ संख्या 220

9 वही, पृष्ठसंख्या 222

10 वही, पृष्ठसंख्या 223

11 वही, पृष्ठ संख्या 223
12 वही, पृष्ठ संख्या 225
13 वही, पृष्ठ संख्या 226
14 वही, पृष्ठ संख्या 224
15 हिंदी चेतना, हिंदी प्रचारिणी सभा, कैनेडा की त्रैमासिक पत्रिका, वर्ष 10, अंक 40, अक्तूबर 2008, पृष्ठ संख्या 34

सहायक ग्रन्थ :

1 समकालीन उपन्यास रचना और परिवेश, नयना, अक्षय प्रकाशन, नई दिल्ली।
2 नरेंद्र कोहली के उपन्यासों का अनुशीलन, डॉ. प्रदीप लाड, अभय प्रकाशन, कानपुर, 2012
3 हिंदुस्तान अंक, 3 सितम्बर 2018, नई दिल्ली।
4 स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास साहित्य की सामाजिक चिंता, डॉ. कुसुमराय, अमन प्रकाशन, कानपुर, 2011
5 हिंदी चेतना, हिंदी प्रचारिणी सभा, कैनेडा की त्रैमासिक पत्रिका, वर्ष 10, अंक 40, अक्तूबर 2008

सहायक वेबसाइट

1www.bharatiyasahityas.com
2www.hi.m.wikipedia.org
3 www.pustak.org

♦ हिन्दी विभाग
अध्यक्षा एवं सहायक प्राध्यापिका
के. एस. एम. डी. बी. कॉलेज
शास्ताम्कोट्टा,
कोल्लम जिला।

चिद्-चितेरे की आत्मव्यंजना

♦ डॉ.रंजीत रविशैलम

आधुनिक कालीन हिंदी साहित्य की नियति भेस बदलकर तनावों से युक्त होकर नये सिरे से दांत विहीन अनादि की ओर अबाध गति से चल रही है। कुछेक राजनीतिक उथल-पुथल के साथ साहित्य में लहराती नवीन प्रवृत्तियों का नज़ारा पाठक अनुभूत करते आ रहे हैं। आधुनिकता की परत के साथ चिरंतन मुद्दों पर भी दृष्टि रखनेवाले एक अप्रतिम रचनाकार डॉ.नरेंद्र कोहली जी 'हाड-मांस' के साथ जीवित थे, मगर अब उनकी बुलंद आत्मा ब्रह्मलीन हो चुकी है। उन्होंने भारतीय अनुवंशिक रीति-रिवाज़ों, दंतकथाओं, परिकथाओं आदि का निष्ठापूर्वक अध्ययन-अनुसंधान करने के पश्चात् नव्य सुदृष्टि के साथ कागज़ों में उकेरा। अध्यापकी आपकी पेशा रही। साहित्यिक दृष्टिकोण के परिप्रेक्ष्य में भी उनका योगदान कम नहीं रहा। पुराण एवं इतिहास के कई विषयों को केन्द्र में रखकर साहित्य सर्जना करने में वे अव्वल थे। उनकी कृतियों में अभ्युदय (राम कथा पर आधृत), महासमर (महाभारत), तोड़ो कारा तोड़ो (विवेकानन्द) आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। उनकी साहित्यिक यात्रा का प्रारंभ अलाहाबाद से प्रकाशित 'कहानी' पत्रिका में छपी 'दो हाथ' कहानी

के प्रकाशन से हुआ।

मीडिया में जब भी पुराण-इतिहास पर बात चलने लगती है, तब आलोचक की दृष्टि रामकथा की ओर अत्यंत सहजता के साथ अवश्य ही पहुँच जाती है। इसमें दो राय नहीं हैं। एतदर्थ हमारी चर्चा के केन्द्र में साहित्यकार, भाषाविद् डॉ.नरेंद्र कोहली जी हैं। उन्होंने साहित्य में भाषाई झिलंगा कसने में अपना सर्वस्व त्याग दिया। साहित्य की पस्त हालत में उनका आगमन हिंदी साहित्य के क्षेत्र में हुआ था। तब उन्हें कुछ पसोपेश ज़रूर हुआ होगा। लेकिन उन्होंने अपना साहित्य 'टेकन' पुराणेतिहास को ही बनाया तो हमें अकूत साहित्य प्राप्त हुआ। शनैः शनैः उनकी साहित्य सर्जना सुष्ठु पूर्णामृता बनकर उभरी। ऐसे साहित्य चितेरे पर अनुसंधान अनवरत हुआ या हो रहा है, पर उनकी जीवनी किसी ने नहीं लिखी।

भरपूर साहित्य वाङ्मय को प्रदान करनेवाले नरेंद्र कोहली जी की आत्मकथा है - 'आत्मस्वीकृति'। इस कृति के माध्यम से पाठक उनके व्यक्तित्व को भलीभांति समझ सकते हैं। यह कृति साक्ष्य देती है कि एक वरिष्ठ प्रभावी लेखक बनने के लिए 'अनुभवों' का कितना महत्वपूर्ण स्थान होता है। मीठे-कडुए अनुभवों के घेरे में रहकर कोहलीजी ने अपनी 'छवि' को तेजस्विता प्रदान की।

डॉ.नरेन्द्र कोहली जी के लिए आपका स्यालकोट, पाकिस्तान, जहाँ उनका जन्म हुआ था, से जमशेदपुर तक का सफरनामा अत्यंत रोचक रहा। दादा हरकिशनदास की दूसरी शादी, तत्संबंधी समस्याएँ, दादा-दादी के पुत्र के रूप में कोहली जी के बड़े भाई सोमदेव कोहली को 'दत्तक' जाना, पिताजी परमानंद कोहली की आर्थिक परेशानियाँ, माँ विद्यावती का वात्सल्य, विस्थापन की समस्याएँ, उर्दू की जानकारी, स्कूल में मेधावी छात्र रहना,'हिंदी' साहित्य का अध्ययन करने का निर्णय, राँची तथा दिल्ली के रामजस कॉलेज की पढ़ाई, कुछेक प्रेम प्रसंग, वरिष्ठ साहित्यकार-आलोचक डॉ.नगेन्द्र का शिष्य बनना, श्रीमती मधुरिमा जी से विवाह आदि इस 'आत्मकथा' की मुख्य बातें हैं। अपने जीवन को जहाँ खुलकर कहने की स्थिति उत्पन्न होती थी तब उसे व्यक्त करने हेतु उन्होंने समय-समय पर रचित अपने उपन्यासों के किस्से के ज़रिए प्रस्तुत किए।

इस आत्मकथा से ज्ञात होता है कि आप पाँच भाई एक बहन थे। सबसे बड़ा सोमदेव, दूसरे सुदर्शन, तीसरे स्थान पर बहन विमला, चौथा भूषण, पाँचवाँ नरेन्द्र कोहली और छठा उनका अनुज रवीन्द्र। 'दत्तक' हो जानेवाले सोमदेव की मानसिक उथल-पुथल पर कोहली जी ने बड़ी ही दिलचस्पी से लिखा है। यथार्थ जीवन में घटित संघर्षों का वर्णन इनके कथासाहित्य का अभिन्न अंग है। इसलिए ही उन घटनाओं का जब भी वर्णन करने की आवश्यकता होती है, तब उन 'किस्सों' को ज्यों का त्यों प्रस्तुत कर देते हैं। आत्मकथा में कहानियों के ऐसे अंश बहुधा पाए जाते हैं।

विस्थापन संबंधी समस्या मानव को 'यथार्थ' स्थित का अर्थात् कुछ भी नहीं होने की स्थिति का एहसास कराती है। विस्थापन की भीषण स्थिति के बारे में उन्होंने लिखा है - ''तभी देश का

बँटवारा हुआ। वह प्रदेश जो कल तक भारत था, अब पाकिस्तान में चला गया। स्थान-स्थान पर हिंदू मुहल्लों पर आक्रमण होने लगे और हिंदू अपने घर छोड़-छोड़कर भागने को बाध्य हो गये। जहाँ हिंदुओं ने मुसलमान दंगैयों का सामना करने का प्रयत्न किया, वहाँ पाकिस्तानी पुलिस, दंगैयों के पक्ष में आकर खड़ी हो गयी।" और आगे वे लिखते हैं - 'कूचे दानी के बाहर अल्लाह हो अकबर' नारे लगाते रहे। मकान जलते रहे। पहले तो यदा-कदा 'हर हर महादेव' के नारे भी सुनाई दे जाते थे, किंतु क्रमशः वे - क्षीण होते हुए, शांत हो गए थे। उन्होंने अपने विस्थापित होने के दर्द को इस प्रकार व्यक्त किया है –"पैरों के नीचे से धरती खिसकने का मुहावरा तो जीवन में बहुत बार सुना और पढ़ा है, किंतु उस काली रात में उसको बड़ा जीवंत अनुभव किया था।

'धत किडीह लोअर प्राइमरी स्कूल' में पढ़ने के पश्चात् जमशेदपुर को-ऑरेटिव कॉलेज में उन्हें बड़े ही प्रभावी एक गुरु की प्राप्ति हुई – लेफ्टनेंट डॉ.चन्द्रभूषण सिन्हाजी। बड़े ही सत्यप्रिय, अनुशासन प्रिय गुरु की शैली उन्होंने अपनायी थी। वहाँ लेखक मंडल और हिंदी साहित्य परिषद् में जुड़ना आदि घटनाएँ नरेंद्र कोहली जी के व्यक्तित्व को निखारने में सक्षम हुई हैं। अपने गुरु के प्रति जो श्रद्धाभाव उनमें कूट कूटकर भरा है इससे ज्ञात होता है कि कितने पवित्र रिश्ते उस समय के अच्छे गुरु-शिष्यों में होते थे। 'गुरु को ईश्वर' मानना तत्कालीन शिष्यों की चर्या थी। एक अर्थ में गुरु ईश्वर से बड़े दिखने लगते हैं। उनकी आत्मकथा में अभिव्यक्त ऐसी कहानियाँ पाठकों के दिल को छूनेवाली होती हैं। यहाँ यह नज़र आने लगता है कि डॉ.चन्द्रभूषण सिन्हाजी ने नरेन्द्र कोहली में अपने व्यक्तित्व की अमिट छाप छोड़ने में सक्षमता हासिल की है। सिन्हाजी के विस्तृत वृत्तांत की अभिव्यक्ति इस आत्मकथा की सविशेषता है। 'आत्मकथा' से यह ज्ञात होता है कि चन्द्रभूषण सिन्हाजी जैसे गुरुओं का शिष्यों पर कितना गहरा प्रभाव पड़ता है। उनके द्वारा डॉ.नरेंद्र कोहली जी को रुपए देना, घुमाना आदि अनेक दिलचस्प प्रसंग आत्मकथा के भाग हैं।

'आत्मस्वीकृति' के रूप में वे लिखते हैं – "तब ही मैंने जाना कि अपनी ना-समझी भरे अहंकार में मैं स्वयं को ही आगे बढ़ाता रहा और यह देखा ही नहीं कि किन किन हाथों का सहारा मुझे आगे बढ़ा रहा है।" अपने गुरुओं के प्रति श्रद्धाभाव रखनेवाले नरेंद्र कोहली को उनके ही आशीर्वाद स्वरूप साहित्य के तमाम पुरस्कार आदि प्राप्त हुए हैं। डॉ.नगेंद्र ने उनके जीवन को सही दिशा देने में सहायता प्रदान की है। अपने विद्यार्थी काल से ही नरेंद्र कोहली जी उनके अध्यापकीय रूप को पसंद करता आया, मगर उनका 'चेला' या 'चमचा' बनना उन्हें पसन्द नहीं था। इसलिए ही उन्होंने एक दफा कुछ कर देने को कहा तो "कोहली' जी उसे साफ मना कर दिया था। पाठकों को इस प्रसंग के बारे में भिन्न मत हो सकता है। लेकिन कोहली जी में एक 'ठोसपन जो था उसे वे स्वाभिमान कहते हैं, उसे किसी के आगे समर्पित करना कतई वे नहीं चाहते। डॉ.नगेंद्र में दूसरों से अपने काम कराने की प्रवृत्ति कूट-कूटकर भरी थी। लेकिन उनका शब्दशः अनुपालन करनेवाले वे नहीं थे। डॉ.नगेंद्र को उनपर कृपादृष्टि

बहुत ज़्यादा थी। उनके बारे में एक पैनी दृष्टि उन्होंने रखी थी। बड़े ही मेधावी छात्र होने के कारण डॉ.नगेन्द्र का उनपर पुत्रवत् स्नेह था। लेखक के रूप में ख्याति प्राप्त करने के पश्चात् डॉ.नरेन्द्र कोहली ने अध्यापकी छोड़ दी। इसमें डॉ.नगेंद्र काफी नाराज़ थे। इसलिए नगेंद्र जी की वृद्धावस्था में कोहली जी उनसे दूर हो गए। मधुरिमाजी से उनका विवाह भी कम रोमांचकारी नहीं है। उसका प्रस्ताव यहाँ संगत नहीं होगा। आत्मस्वीकृति में पाठकों को उनके मधुरिमाजी से मिलन के प्रसंग पर हर्ष अनुभूत हो सकता है। एतदर्थ उनकी आत्मकहानी में संघर्ष गाथाएँ बहुत हैं। पारिवारिक तनाव से लेकर नौकरी पेशा व साहित्यिक जीवन की संघर्ष कहानियाँ उनकी आत्मकहानी की विशेषताएँ हैं।

डॉ नरेन्द्र कोहली ने इतना विपुल मौलिक साहित्य रचा है कि शायद ही उनके किसी समकालीन ने ऐसा किया हो। वे हिंदी के ऐसे अनूठे साहित्यकार हैं जिन्होंने भारतीय मिथ के उन बड़े नायकों को ध्यान में रखकर निरंतर लिखा। उनकी लेखकीय शुरुआत भी बड़ी ही कठिन स्थिति से हुई थी। एक बार लोकसभा टी.वी. पर भी इसकी बड़ी दिलचस्प कहानी प्रसारित हुई थी। रामायण पर विशद रूप से चर्चाएँ चल रही थीं। वाल्मीकी रामायण से लेकर विभिन्न 'रामायणों' या 'रामकथाओं' पर बात चल रही थी। उस क्रम में एक कृति का बड़े ही गर्व के साथ ज़िक्र किया गया - 'दीक्षा' नाम्नी कृति पर। उस कृति के लेखक डॉ.नरेंद्र कोहली जी थे। उन्होंने 'श्रीकृष्ण प्रकाशन' के प्रकाशक से कहा –"इस कृति को प्रकाशित करना है और उसके लिए पूँजी देने के लिए मैं तैयार हूँ।" लेकिन प्रकाशक ने उस कृति को बड़ी ही निष्ठा से पढ़ा और कहा कि यह कृति बड़ी ही उत्कृष्ट बनी है और इसे मैं ही छापूँगा। शुरुआती दौर में किसी भी प्रकाशक के लिए यह किसी 'सम्मान' से कम नहीं होता। ध्यातव्य है कि इस घटना ने उनका हौसला आगे बढ़ाया और अकूत साहित्य सर्जना यात्रा में उत्प्रेरक बना।

डॉ.नरेंद्र कोहली को तमाम पुरस्कार प्राप्त हुए हैं। भारत सरकार ने उनकी उत्कृष्ट साहित्य सर्जना को मद्दे नज़र रखते हुए 'पद्मश्री' अलंकरण से विभूषित किया। अन्य साहित्य पुरस्कारों में प्रमुख है व्यास सम्मान। कोविड़ महामारी के चंगुल में फँसकर उस महात्मा का स्वर्गवास तो हुआ है, लेकिन उनके साहित्य और आत्मकथा उनका यहाँ होने का एहसास दिलाती रहेंगी। उनकी तेजोमयी प्रज्वलित आत्मा के सामने हमें नतमस्तक होना चाहिए। उन्हें डॉ.एस.राधाकृष्णन जी की एक पंक्ति बहुत पसंद थी –"मनुष्य ने पक्षियों के समान आकाश पर उड़ना पानी में तैरना सीख लिया है, किंतु मनुष्य के समान भूमि पर चलना अभी तक नहीं सीख पाया। डॉ.नरेन्द्र कोहली सच्चे अर्थ में एक बड़े साहित्यकार होने के साथ एक महामानव भी थे।

आधार :

आत्मस्वीकृति, नरेन्द्र कोहली, प्रकाशक-हिन्दी बुक सेंटर, 2014

◆ रविशैलम
कट्टच्चलकुषी.पी.ओ
बालरामपुरम
तिरुवनन्तपुरम-695501,केरल

उत्तराधुनिक हिन्दी कविता- एक परिदृश्य

♦ डॉ.रॉय जोसफ

कविता, भोगे हुए जीवनानुभवों का प्रतिफलित चिंतन है। इसे हम जीवन की भागीरथी भी मान सकते हैं। जिसप्रकार हिमालय के उद्दाम शिखरों पर सूर्य के सप्तरंग आतप पड़ने से हिम का विगलन, भागीरथी गंगा के रूप में परिवर्तित और प्रवाहित होता है, उसीप्रकार मानवीय चेतना से कविता का उद्‌गम होता है। कवि के हृदय की अनुभूतियाँ किसी विशेष प्रभाव और आवेग से विगलित होकर कविता के रूप में प्रवाहित होती हैं।

कविता का जैविक संबंध जीवन से ही होता है। अतः जीवन से ऊर्जा पाकर ही कोई भी महान रचना प्रणीत होती है। मानव जीवन के मर्मस्पर्शी अनुभवों से गठित होने वाली अनुभूतियों से संवलित कविता भी जीवन - निरपेक्ष और वायवी रचना नहीं रहेगी। इसी प्रकार मानव जीवन जितना पेचीदा बनता जा रहा है, उतनी ही उसकी कविता भी संवेदना और संरचना दोनों स्तरों पर संकीर्ण हो जाएगी। यही कारण है कि उत्तराधुनिक हिन्दी कविता जीवन की इन संकीर्णताओं एवं वैविध्यपूर्ण संवेदनाओं को आत्मसात करके अभिव्यंजना की विभिन्न दिशाओं से होकर विकास पाती रहती है। आज उत्तराधुनिक हिन्दी कविता की अपनी एक सुनिश्चित रूपरेखा बन चुकी है और यह काव्यधारा आज हिन्दी साहित्य की एक नई प्रवृत्ति के रुप में उभर आयी है। वर्तमान ज़िंदगी से सरोकार रखने वाली कविता को उत्तराधुनिक कविता कहते हैं। देशकाल की सीमाओं को तोड़कर संवेदनशील मानव से तादात्म स्थापित कर लेना उत्तराधुनिकता का सबूत है। आज कविता का भावबोध बिलकुल बदल चुका है और कविता रसानुभूति की अपेक्षा ज्ञानात्मक संवेदना प्रदान करती आ रही है। उत्तराधुनिक कविता में हमारे सामयिक जीवन की अनेक स्थितियों की अभिव्यक्ति हुई है। कवि जिस समाज मैं रहता है, उसी से भाव, विचार, प्रभाव और अनुभव स्वीकार करता है। कवियों ने समकालीन ज़िन्दगी को बारीकी से पकड़कर युग-चेतना एवं युग-संदर्भों को अपनाया है। समकालीन जीवन संदर्भो में आज का समग्र जीवन आ जाता है, जिसमें सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक स्थितियों तथा धर्म, शिक्षा, कला और संस्कृति के अनेक भेद-विभेद संबंधी स्थितियों का चित्रण तो होता ही रहता है। वस्तुतः उत्तराधुनिकता का स्रोत अपने परिवेश की सच्चाइयों के भीतर रहता है। जहाँ जन मुक्ति की आंकाक्षा को लेकर कवि की संवेदना और पक्षधरता कलात्मक ढंग के साथ संतुलित होकर भविष्य के संदर्भ में अपना आकार देखते हुए वर्तमान को व्यक्त कर पाती है, वहाँ उत्तराधुनिकता पैदा होती है। अपने समय की महत्वपूर्ण समस्याओं से उलझना ही उत्तराधुनिकता है, और सृजनशीलता के संदर्भ में उत्तराधुनिकता का मतलब है किसी रचनाकार का अपने समय एवं समाज के प्रति सचेत एवं सजग होकर अपने वर्तमान को आत्मसात करना। सन् साठ के बाद के कवियों ने उत्तराधुनिक परिवेश में व्याप्त असंगति, शोषण, अन्याय, उत्पीड़न और दमन को देखकर अपनी कविता के द्वारा तीव्र असहमति और अस्वीकार का भाव प्रकट किया है। सातवें दशक के

आते - आते हिन्दी की उत्तराधुनिक कविता में एक प्रकार का विरोधी स्वर अपने पूरे तेवर के साथ मुखरित हुआ है और यह स्वर उत्तराधुनिक कविता के विविध आन्दोलन-अकविता, भूखी पीढ़ी की कविता, सहज कविता और विचार कविता के रूप में ही मुखरित हुआ है। इस प्रकार की कविता के सृजनकामियों में राजकमल चौधरी, धूमिल, जगदीश चतुर्वेदी, श्याम परमार, मणिका मोहनी, मोना गुलाटी आदि प्रमुख हैं। आठवें दशक तक आते समय हिन्दी कविता के कथ्य में और भी कई महत्वपूर्ण परिवर्तन आए हैं। इस दौर के कवियों ने अपनी कविताओं को स्वच्छ वैचारिक धरातल देने का प्रयास किया है।

आठवें दशक की कविता पूरी तरह मानवीय संदर्भो से जुड़ी हुई कविता है। नवें दशक की कविता अपने पूर्ववर्ती कवियों की कविताओं से एकदम भिन्न दीख पड़ती है। उस काल के कवि अपने समय की स्थितियों को देख - समझकर उनके प्रति संवेदनशील रहते हैं। इनकी कविताओं में नवें दशक का भारत अपनी संपूर्ण विभीषिकाओं के साथ उभर आया है। इस दौर की कविता में राजनीति के प्रति या विचारधारा के प्रति उतना मोह दिखाई नहीं पड़ता, जितना उसकी पूर्ववर्ती पीढ़ी में दिखाई पड़ता था। नवें दशक के अधिकांश कवि विचारधारा और दलगत राजनीति से मुक्त होकर अपनी कविताओं में आम जनता की समस्याओं का चित्रण करने लगे, और यह कविता आम जनता के प्रति पूर्ण रूप से समर्पित कविता है। इस दौर की कविता नगरीय जीवन के चित्रण के साथ - साथ लोक चेतना का चित्रण भी करने लगी। इसलिए कविता में एक प्रकार की जनपदीय आभा एवं स्थानीयता का समावेश भी होने लगा। राजेश जोशी, उदयप्रकाश, मंगलेश डबराल, विष्णु खरे, ज्ञानेन्द्रपति, अष्टभुजा शुक्ल, अशोक बाजपेयी, बीरेन डंगवाल, देवीप्रसाद मिश्र, अरुण कमल, विनोद कुमार शुक्ल, कुमार विकल, कात्यायनी, एकांत श्रीवास्तव, कुमार अंबुज आदि अनेक कवि हैं जो आज की भयावह एवं विद्रूप स्थितियों को लेकर कविताएँ लिख रहे है। इक्कीसवीं सदी में जो कविता लिखी जा रही है, उसका बारीक अध्ययन करने से एक बात मुख्य रूप में सामने आती है कि कविता जिस परिवेश में लिखी जा रही है, उसका मूल स्वर लोक जीवन के तमाम संधर्षों को नैतिकता, ईमानदारी, भावप्रवणता एवं संप्रेषणीयता के साथ अभिव्यक्त करना है। यह अत्यंत परामर्शयोग्य बात है कि आज कविता को देश - विदेश की तमाम चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। उन तमाम चुनौतियों के बावजूद कविता मौलिकता और अभिव्यक्ति के नये-नये तरीकों के कारण आगे बढ़ रही है।

इस संकटकाल में हिन्दी की उत्तराधुनिक कविता अत्यंत निड़रता और साहस के साथ आगे बढ़ रही है। भूमण्डलीकरण और वैश्विक पूँजी के इस उत्तराधुनिक दौर में कविता प्रत्येक धटना को बड़ी सजगता के साथ देख रही है। आधुनिक समाज में दिन-प्रतिदिन बढ़ती क्रूरता, हिंसा, और आतंक को लेकर इस समय बहुत सारी कविताएँ लिखी जा रही हैं। हेमंत कुकरेती, पवन करण, पंकज चतुर्वेदी, प्रभात, संजय कुंदन, सुंदर चंद ठाकुर, निर्मला गर्ग, स्वप्निल श्रीवास्तव, वसंत त्रिपाठी, निर्मला पुतुल, प्रेमरंजन अनिमेष, अरुण देव आदि युवा पीढ़ी के कवि अपनी कविताओं में अपने समय की भयावहता, हिंसा, आतंक और आशंकाओं का चित्रण कर रहे हैं। इसलिए हम कह सकते है कि उत्तराधुनिक कविता वस्तुतः अपने समय, समाज और उसके सरोकारों से हमकलम होना है। उत्तराधुनिक कविता वर्तमान समाज के आदमी के सहजबोध की

कविता है। इसमें अपने समय की बेचैनी और छटपटाहट की पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। समकालीन जीवन की आपाधापी, बाज़ारवाद, तकनीकी क्रांति, मल्टीनेशनल कंपनियों का बढ़ता आतंक - इन सभी पर कवि अपना सार्थक हस्तक्षेप दर्ज़ कराते हैं। अपसंस्कृति हमारे समूचे परिदृश्य पर छा गई है। यहाँ हत्यारे धूम रहे हैं। वे पूरा माहौल बदलना चाहते हैं। मीड़िया उन्हें फिल्म में ढ़ाल रहा है। इसलिए हमारे विचार या हमारी भाषा और हमारे सारे समारोह भी उसी के होंगे। लीलाधर जगूड़ी ने 'हत्यारा' शीर्षक कविता में इस प्रकार लिखा है-

"हत्यारे के पास करने को हैं कई वारदातें
कई दुर्धटनाएँ
देने को हैं, कई जलसे, कई समारोह
हत्या हो, समारोह हो और विचार हों सिर्फ उसके।''(1)

हमारे समाज में हिंसा व बुराइयों की सामाजिक स्वीकृति ही नहीं है बल्कि वे एक तरह की प्रतिष्ठा का कारण भी बन रही हैं, और क्रूरताएं सुदंर के उदाहरण के तौर पर प्रदर्शित हो रही हैं। क्षमाभाव, प्रेम, करुणा, श्रृगार आदि भावों से हमारी संस्कृति बनती थी, अब उनके स्थान पर क्रोध, प्रतियोगिता, क्रूरता और हथियार से हमारी संस्कृति बनती है। कुमार अंबुज ने यों लिखा है-

"धीरे - धीरे क्षमाभाव समाप्त हो जाएगा।
प्रेम की आकांक्षा तो होगी मगर ज़रूरत न रह जाएगी।
झर जाएगी पाने की बेचैनी और खो देने की पीड़ा।
एक अनंत प्रतियोगिता होगी जिसमें लोग
पराजित होने के लिए युद्धरत होगे।
तब आएगी क्रूरता
पहले हृदय में आएगी और चेहरे पर न दिखेगी।" (2)

वर्तमान समय से कवि यह अनुभव कर रहे हैं कि जिन लोगों ने हमारे समय को क्रूर, स्वार्थ एवं बाजारू बना दिया है, उन्हीं ताकतों ने मनुष्य को यांत्रिक बना दिया है। आज हम या तो क्रेता बन गए हैं अथवा विक्रेता।

आजकल बाज़ारों में चमत्कारों का व्यापार सबसे आधिक चल रहा है। जब चीज़ें अपने सबसे बुरे दौर से गुज़र रही हैं, तब बाज़ार के रूप में हमारे सामने एक भयावह परिदृश्य दिखाई देता है। कवि को यहाँ हर जगह बाज़ार दीख पड़ता है। मुक्त बाज़ार की असीमित समृद्धि एवं खुशहाली का चित्रण झानेन्द्रपति ने अपनी 'आज़ादी उर्फ गुलामी' कविता में यों उकेरा है-

"आज़ादी के गोल्डन जुबली साल में
आज़ादी का मतलब है
बाज़ार से अपनी पसंद की चीज़ चुनने की आज़ादी
और आपकी पसंद
वे तब करते हैं
जिनके पास उपकरणों का कायाबल
विज्ञापनों का मायाबल
आपकी आज़ादी पसंद है उन्हें
चीज़ों का गुलाम बनने की आज़ादी....." (3)

उत्तराधुनिक कवि वर्तमान की क्रूर विड़म्बनाओं का चित्रण करते समय अपने ऊपर अनेक दबावों को महसूस कर रहे हैं, जैसे - तकनीकी क्रान्ति का दबाव, आर्थिक साम्राज्यवाद का दबाव, मुक्त बाज़ार का दबाव, नई आर्थिक नीति का दबाव, मल्टिनेशनल्स का दबाव, चीज़ों एवं विज्ञापनों का दबाव और इन सबके ऊपर वैश्वीकरण की नई संस्कृति का दबाव। इन सबके कारण देश के किसानों को आत्महत्या करनी पड़ती है और अपनी ज़मीन की रक्षा के लिए संघर्ष

करना पड़ता है। बाज़ार की नई ताकतों ने अब हमारे किसान-मज़दूरों की ज़मीन पर अपनी नज़र डाली है। नंदीग्राम और सिंगूर में अपने हक के लिए जो किसान -मजदूर संघर्षरत है, उन्हीं के प्रति अपनी हमदर्दी प्रकट करने के लिए उत्तराधुनिक कवि तनिक भी संकोच नहीं करते हैं। रबीन्द्र भारती ने लिखा है-

"वे इसी नंदीग्राम और सिंगूर के लोग थे
वे लोग इसी मिट्टी पानी के थे
उन्होनें सिर्फ यह बताने की कोशिश की
कि नंदीग्राम और सिंगूर कोई रुमाल नहीं
जो चाहे जेब मे लेकर चलता बने।" (4)

उत्तराधुनिक कवियों ने बाज़ारीकृत अर्थव्यवस्था के दौरान नारी के प्रति भी अपनी गंभीर संवदेना प्रकट की है। वर्तमान पुरुषवादी समाज में नारी का कोई विशेष अधिकार नहीं है। उत्तराधुनिक हिन्दी कविता मे नारीवादी आन्दोलन से जुड़ी हुई कविताएं लिखी जा रही हैं। अनेक कवियों ने अपने - अपने स्तर से नारी की पीड़ा को व्यक्त करने का श्रम किया है, जिनमें प्रमुख हैं - विनोद दास, गोरख पाण्डेय, देवी प्रसाद मिश्र, एकांत श्रीवास्तव, कात्यायनी, गगलगिल, नारायण आदि। स्त्री के खिलाफ किसी न किसी रूप में हिंसा ज़ारी है। आज इस बाज़ारीकृत समाज में स्त्री ही सबसे सफल उपभोक्ता है और स्त्री के पैसों से ही यह बाज़ार संचलित है। प्रमुख रचनाकार श्रीमती प्रभा खेतान कहती है - "मगर बदले में बाज़ार की गुणवता पर बोलने, मतामत देने या इसका विरोध करने का स्त्री का कोई हक नहीं है। यह बात पढ़ी - लिखी शहरी स्त्री और अनपढ़ ग्रामीण स्त्री पर समान रुप से लागू होती है। यह किसी उच्च जाति की सवर्ण स्त्री के बारे में जितना सच है उतना ही पिछड़ी या दलित स्त्री के बारे में भी सही है। बाज़ार ने अपना शिकार खोज लिया है। बाज़ार स्त्रियों में कोई भेदभाव नहीं करता।" (5) भूमंडलीकरण और बाज़ारवाद की इस अंधी दौड़ में आज सारी दुनिया शामिल हो रही है। हिन्दी की उत्तराधुनिक कविता इस कड़वे सच को स्वीकार कर इसकी खुली अभिव्यक्ति कर रही है। इसका मतलब यह है कि उत्तराधुनिक कविता अपने समय में धटित होनेवाली प्रत्येक घटना को हमारे सम्मुख रखती है; उत्तराधुनिक कविता कालवाची एवं क्षणवाची है। इसमें अपने समय की सारी गतिविधियों को ग्रहण करने की शक्ति है और यह उसकी अनिवार्य विवशता भी है।

संदर्भ-सूची

1. लीलाधर जगूड़ी - भय भी शक्ति देता है, पृ. 8, राजकमल प्रकाशन, 2007
2. कुमार अंबुज - क्रूरता. पृ. 21,राधाकृष्ण प्रकाशन, 2007
3. ज्ञानेन्द्रपति-संशयात्मा, पृ. 123,राधाकृष्ण प्रकाशन, 2006
4. रवीन्द्र भारती - जनसत्ता, पृ. 29 अप्रैल, 2007
5. प्रभा खेतान - भूमंडलीकरणः ब्रांड संस्कृति और राष्ट्र, पृ. 225, समसामयिक प्रकाशन, 2010

♦ अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
एस.बी. कालेज,
चंगनाशेरी, केरल -686101

मुद्रक तथा प्रकाशक डॉ.पी.लता, आरती, टी.सी. 14/1592, फोरस्ट ऑफिस लेन, वषुतक्काटु, तिरुवनन्तपुरम -14 द्वारा अबी प्रकाशन एन्ड प्री-प्रेस, करुमम्, तिरुवनन्तपुरम -2 में मुद्रित तथा डॉ.पी.लता द्वारा संपादित
Printed & Published by Dr.P.Letha, Arathi, T.C. 14/1592, Forest Office Lane, Vazhuthacaud, Thiruvananthapuram -14,
Printed at Abi Design & Pre-Press, Karumom, Thiruvananthapuram -2 & Edited by Dr. P. Letha